अंक-8, जून, 2025

पर्यावरण संवाद

प्रकृति एवं देशज संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए

हूल जोहार!

रोज दी का रचना संसार और पर्यावरण सौंदर्य

बोलती तस्वीरें

दिनांक 30-31 अगस्त 2018 को एस.डी.सी. रांची में आयोजित कार्यक्रम आनंददायी शिक्षा : चिंतन और प्रयोग में रोज केरकेट्टा

28 फ़रवरी 2017 को एच.आर.डी.सी. रांची में आयोजित कार्यक्रम में रोज केरकेट्टा का सम्मान

दिनांक 5 दिसम्बर 2018 को संवाद रांची कार्यालय में रोज केरकेट्टा का जन्म दिन मनाते हुए

दिनांक 9 अक्टूबर 2018 को एस.डी.सी. रांची में आयोजित कार्यक्रम नूतन स्मृति व्याख्यान सह प्रभावती सम्मान समारोह के दौरान ग्रुप फ़ोटो

25-26 फरवरी 2013 को एच.पी.डी.सी., रांची में आयोजित बाल अधिकार : संकल्प और सरोकार कार्यक्रम में रोज केरकेट्टा

8-9 अगस्त 2017 को एच.पी.डी.सी., रांची में आयोजित झारखंड जतरा कार्यक्रम में रोज केरकेट्टा, महादेव टोप्पो, घनश्याम और शिशिर टुडू।

विषय क्रम

संपादक
घनश्याम

संपादक मंडल
उदय
अबरार ताबिन्दा
पूनम रंजन
सीमांत सुधाकर
महेश मिश्रा
तहा सैफुद्दीन
सालगे मार्डी
कोर्दुला कुजुर
ऐनी टुडू
श्रावणी
शशि बारला

संवाद सूत्र
मालती कुमारी
अश्विनी महाराणा
संजय समीर एक्का
आनंद मरांडी
कुंदन कुमार भगत
सीमा
सुशीला हेम्ब्रम
मिनीला बास्की

कला संपादक
शेखर

साज-सज्जा
जमील, राकेश व जावेद

संपादन कार्यालय
पर्यावरण कक्ष “संवाद” 52 बीघा,
मधुपुर, झारखंड
की ओर से प्रकाशित
मुख्य कार्यालय
‘संवाद’, 104/A उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, राँची - 834001
www.samvad.net

घनश्याम द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा
आई.डी.पब्लिशिंग, राँची द्वारा मुद्रित
सीमित प्रसार

• **जलती मशाल**
  • डॉ. रोज केरकेट्टा... मशाल जो बुझी नहीं, जलती रही... – **सुधीर पाल** 5

• **संस्मरण**
  • डॉ. रोज केरकेट्टा : एक संस्मरण – **बिन्नी** 8

• **जिजीविषा**
  • झारखंड को गढ़ती एक आदिवासी बुद्धिजीवी महिला की जिजीविषा! – **ज्योत्सना तिर्की** 9

• **सशक्त आवाज**
  • झारखण्ड के शोषितों-वंचितों की सशक्त आवाज थीं रोज दीदी – **अनुज बेसरा** 13

• **श्रद्धांजलि**
  • कार्यकर्ता की कलम से – **'संवाद'** 14

• **रचना-संसार**
  • रोज दी का रचना संसार और पर्यावरण सौन्दर्य – **प्रस्तुति : घनश्याम** 15

• **आत्म-बोध**
  • रोज जी! रोज दी!! – **हेमंत** 18

• **उद्गार**
  • सरल स्वभाव की जादूगर : डॉ. रोज केरकेट्टा – **गुलाब चन्द्र** 20
  • हमारी प्रेरणा थी रोज दी – **एनी टुडू** 21

• **चिंतन**
  • रोज केरकेट्टा एक उदाहरण हैं – **रविभूषण** 22

ऐसी थीं रोज दी......!

डॉक्टर रोज केरकेट्टा 17 अप्रैल 2025 को अलविदा कह गईं। वर्षों से बीमार और मृत्यु सैया पर पड़ी रहकर भी उनकी आंखें और उनकी हथेलियों की छुअन हम जैसों को संवेदनशील बनाती रहती थीं। इस दौरान उनसे उनके आवास पर कई बार मिलना हुआ। हर बार उनकी आंखों की दीप्ति हमें रोशनी देती प्रतीत हुई। अपनी हथेलियों से उनकी हथेलियों का स्पर्श हम सबों को अभिप्रेरित करती थीं। कितनी गहरी थीं उनकी आंखें! उनकी द्दष्टि!! कितने भावात्मक-रागात्मकबोध थे उनके स्पर्श में! हर बार उनसे मिलकर अपनी ऊर्जा को बार-बार उर्जस्वित करता रहा।

पिछले तीन दशक से गाहे-बगाहे उनसे मिलना, मिल बैठकर बतियाना जारी रहा। प्रत्येक बार लगता वे अनुभवों की खजाना हैं। अनुभव से उपजे ज्ञान को व्यवहार में बदलने को अभ्यासरत रहतीं। हमेशा झारखंड, आदिवासियत, लैंगिक समानता तथा यहाँ का पर्यावरण-सौंदर्य पर मंडराते खतरे से परेशान रहतीं।

मुझे वह क्षण याद है जब देश के जाने-माने प्रगतिशील और संघर्षरत संत स्वामी अग्निवेश ने उन्हें वियेना सम्मेलन में सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व के लिए आमंत्रित किया था। तब उन्होंने बड़े ही संकोच के साथ सबों से यह पूछा था कि उन्हें वियेना जाना चाहिए या नहीं? हम साथियों के लिए यह खुशी की बात थी। हम सबों से विमर्श के बाद रोज दी वहां गईं। वहां से लौटने के बाद उन्होंने अपने अनुभवों को शेयर किया तो लगा वैश्विक चेतना ने उन्हें और उदार तथा गंभीर बना दिया है। लेकिन साथ-साथ यह भी लगा कि चुनौतियां बहुत बड़ी हैं और कुसंस्कृति का हमला उतना ही संगठित एवं आक्रामक है। इसके मुकाबले हम सब उतने ही असंगठित और साधनविहीन हैं। ऐसी परिस्थितियों में हमें अपने संगठनों को व्यापक वैश्विक-चेतना से लैस करना पड़ेगा। यहाँ हमें यह भी याद रखने की जरूरत है कि हमसब इस गहन प्रक्रिया में अपनी जड़ से न कट जाएँ। अपनी जमीन पर खड़े होकर आसमान छूने की कोशिश ही हमें सार्थक बनाएंगी।

एक और छोटी-सी घटना मुझे बार-बार याद आती है। रोज दी मुज्जफरपुर से सम्मानित होकर आई थीं। वहां उन्हें लाल-इमली ब्रांड की एक बड़ी चादर भेंट की गई थी। उनके साथ जब हम सबों की बैठक समाप्त हुई तो उन्होंने अपने झोले से एक चादर निकाली और मेरे कंधे पर रखते हुए कहा– यह आपके काबिल है। इसे संभालिये! मैं हतप्रभ रह गया। वह महज एक चादर नहीं थी... एक जिम्मेदारी थी.. प्रतिबद्ध रचनाकर्म को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी! रचनाकर्म को अनवरत आगे बढ़ाने की प्रतिबद्धता ऐसे सौंपती थीं रोज दी! रोज दी, तुम्हें हूल जोहार!!

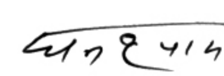

डॉ. रोज केरकेट्टा... मशाल जो बुझी नहीं, जलती रही..

- सुधीर पाल

लड़ती रहीं, भिड़ती रहीं, झारखंड आंदोलन को धार देती रहीं... सड़कों पर भी, साहित्य में भी।" यह पंक्तियाँ केवल एक नारी की जीवनी नहीं, झारखंड की आत्मा की एक प्रतिध्वनि हैं। हम सबों की रोज़ दी यानि डॉ. रोज केरकेट्टा – आदिवासी चेतना की वह मशाल थीं, जो न तो कभी बुझी और न ही कभी झुकी। उन्होंने जीवन भर संघर्ष को अपनाया और उसे रचना में रूपांतरित किया।

झारखंड की धरती ने अनेक अग्निस्वरूपाओं को जन्म दिया है, पर डॉ. रोज केरकेट्टा उनमें से एक विलक्षण आत्मा थीं – जिनकी कलम, चेतना और संघर्ष ने न केवल आदिवासी साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि उस मौन को स्वर दिया जिसे सदियों से दबाया जाता रहा। 17 अप्रैल 2025 को 84 वर्ष की आयु में उनका निधन एक युग का अवसान है, लेकिन उनका जीवन आदिवासी अस्मिता का जीवित दस्तावेज है।

वह हम जैसे युवाओं के लिए झारखंड और आदिवासी अस्मिता को समझने की एक अनौपचारिक पाठशाला थीं। उनके सान्निध्य में बैठना, उनसे सुनना – एक वैकल्पिक विश्वविद्यालय में दाखिल होने जैसा था, जहाँ सिलेबस नहीं, संवेदना पढ़ाई जाती थी।

जड़ों से जुड़ी, शाखाओं तक फैली

डॉ. रोज केरकेट्टा का जन्म 5 दिसंबर 1940 को सिमडेगा ज़िले के केरसई गांव में हुआ। वे खड़िया जनजाति से थीं – एक ऐसी जनजाति, जिसकी भाषा, संस्कृति और ज्ञान परंपरा को उन्होंने जीया, गाया और लिखा। उनके पिता प्यारा केरकेट्टा एक शिक्षक और समाज सुधारक थे – और यही चेतना रोज दी के व्यक्तित्व में भी घुल-मिल गई। उन्होंने हिंदी साहित्य में एमए और पीएचडी की डिग्री ली और शिक्षिका के रूप में सेवा देते हुए, समाज और संस्कृति की रक्षा को अपने जीवन का संकल्प बना लिया।

एक गरीब लेकिन सांस्कृतिक रूप से समृद्ध खड़िया परिवार में जन्मी रोज ने शुरू से ही अपने आसपास की विसंगतियों को देखा – जातिगत उपेक्षा, स्त्री असमानता, भाषा की उपेक्षा, और राज्य व्यवस्था की उदासीनता। वे कहती थीं –"मैंने स्कूल में अपनी भाषा को गाली की तरह सुना, और घर में उसे गीत की तरह जिया। तब मैंने तय किया कि इस गाली को फिर से गीत बनाना है।" उनके भीतर जो स्त्री थी, वह केवल घरेलू नहीं थी – वह सामाजिक और राजनीतिक भी थी। इसलिए उन्होंने शिक्षा को भी केवल डिग्री के लिए नहीं, प्रतिरोध के औजार के रूप में चुना।

डॉ. केरकेट्टा की पहली लड़ाई 'पहचान' की थी – भाषा के स्तर पर, संस्कृति के स्तर पर, और स्त्री के स्तर पर।

वह खड़िया बोलती थीं, लेकिन स्कूल, कॉलेज, नौकरियों, मंचों – हर जगह उन्हें हिंदी या अंग्रेज़ी बोलनी पड़ी।

वे कहती थीं –"मुझसे मेरी ज़ुबान छीनी जा रही थी। धीरे-धीरे मेरी माँ की हँसी, मेरे दादी की कहानी, मेरे गाँव के गीत खो रहे थे।" लेकिन वे हार मानने वालों में नहीं थीं। उन्होंने खड़िया में लिखना शुरू किया – गीत, कविताएं, लोककथाएं, कहानियां। उन्होंने खड़िया को सिर्फ बोली नहीं, आत्मा की भाषा घोषित किया।

रोज केरकेट्टा का साहित्य 'प्रतिनिधित्व' की उस राजनीति को चुनौती देता है जिसमें आदिवासी केवल लोकगीतों या फुटनोट्स तक सीमित कर दिए जाते हैं। उनकी रचना "पगहा जोरी-जोरी रे घाटो" आदिवासी जीवन के उस बंधन की कहानी है, जो एक ओर तो प्रेम और प्रकृति से जुड़ा है, और दूसरी ओर पूंजी और सत्ता से संघर्ष करता है। उनकी कविताएँ, कहानियाँ, भाषण और निबंध विकास के नाम पर विस्थापन, स्त्री जीवन की त्रासदी, डायन प्रथा, जल-

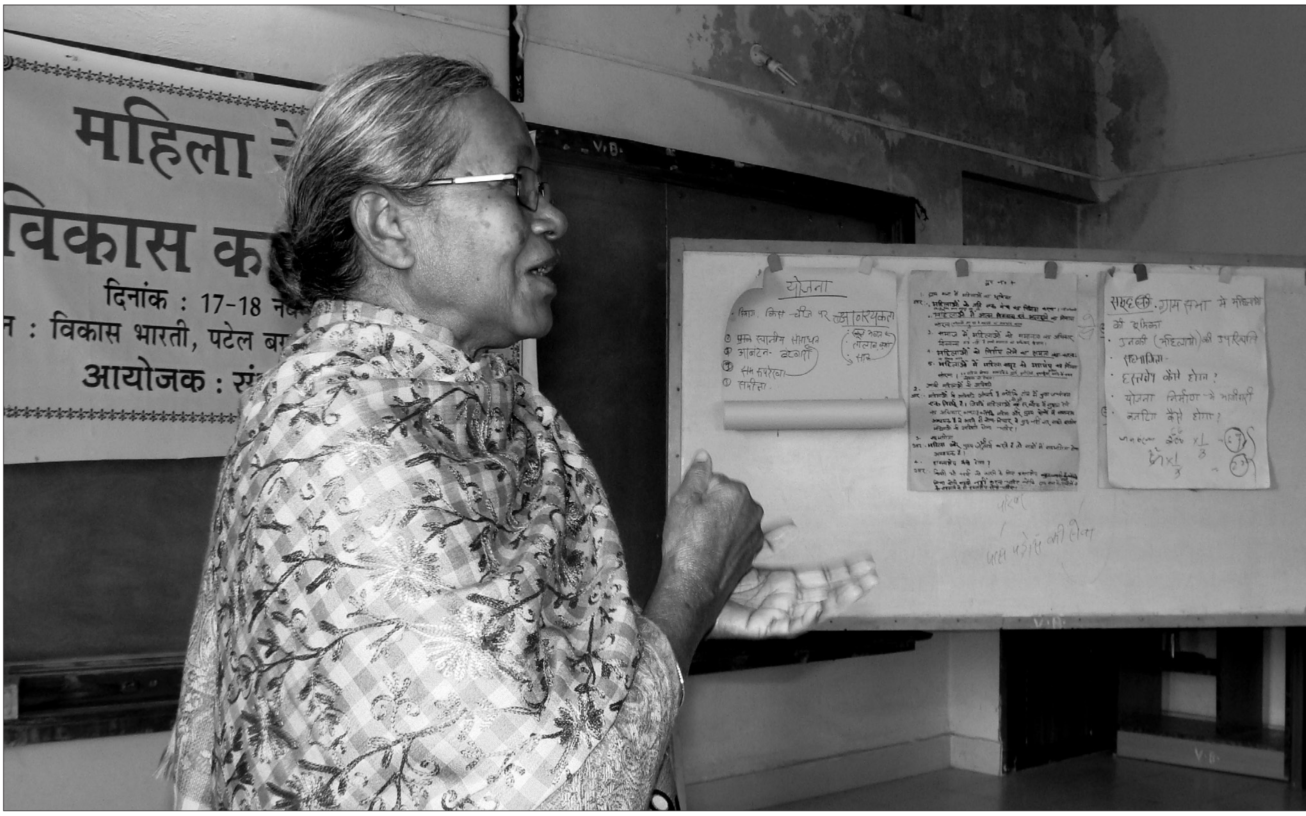

जंगल-जमीन पर अधिकार और भाषिक व सांस्कृतिक हिंसा को गंभीरता से उजागर करते हैं। डॉ. केरकेट्टा ने हिंदी और खड़िया भाषा में कई महत्वपूर्ण रचनाएँ कीं। उन्होंने प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया भाषा में अनुवाद किया, जो एक महत्वपूर्ण कार्य था। उनके प्रमुख साहित्यिक कृतियों में "पगहा जोरी-जोरी रे घाटो" और "सिंकुए सुलोलो" शामिल हैं, जो आदिवासी जीवन की संवेदनाओं और संघर्षों को उजागर करती हैं। उनकी रचनाएं केवल रचनाएँ नहीं, सामाजिक घोषणापत्र हैं।

हिंदी साहित्य में जहाँ आदिवासी अक्सर 'दया' या 'पश्चिमी रोमांटिसिज़्म' के पात्र बने, वहाँ रोज दी ने आत्मकथ्य की परंपरा विकसित की – जहाँ आदिवासी समाज स्वयं बोलता है, अपने शब्दों में, अपनी ध्वनियों में। रोज दी ने खड़िया भाषा को केवल स्मृति में नहीं रखा – उन्होंने उसे आधुनिक साहित्य की भाषा बनाया। उन्होंने प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया में अनुवाद किया, लोकगीतों को संरक्षित किया, और युवाओं को अपनी मातृभाषा में सोचने-लिखने के लिए प्रेरित किया। उनका मानना था कि – "भाषा केवल संप्रेषण नहीं, पहचान है। अगर हम अपनी भाषा छोड़ देंगे, तो पहचान भी खो देंगे।"

उनकी कविताएं सिर्फ पढ़ने के लिए नहीं थीं – वे गायी जाने वाली, चिल्लायी जाने वाली, लड़ने में काम आने वाली रचनाएं थीं। उनकी प्रसिद्ध कविताओं में: 'पानी में डूबी हुई लड़की' – स्त्री उत्पीड़न पर एक प्रतीकात्मक कविता है। उनकी भाषा में क्रोध भी था, करूणा भी थी, उम्मीद भी थी और चेतावनी भी।

खड़िया साहित्य की ध्वजवाहिका

आज जब भारत की क्षेत्रीय भाषाएं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं, डॉ. रोज केरकेट्टा को याद करना जरूरी है, जिन्होंने बिना किसी सरकारी अनुदान के खड़िया भाषा को पुनर्जीवित किया, सहेजा, लिखा और प्रकाशित किया।

उन्होंने खड़िया में:

- लोकगीतों का संकलन
- प्रेमचंद की कहानियों का अनुवाद
- खड़िया-हिंदी शब्दकोश
- बच्चों के लिए कहानियां तैयार कीं – और यह काम उन्होंने अपनी निजी निधि से किया।

वे मानती थीं – "मातृभाषा का संरक्षण कोई सरकार नहीं करेगी, यह माँ और उसके बच्चों का काम है।"

साहित्य से परे एक जन योद्धा

रोज दी केवल कलम तक सीमित नहीं रहीं। वे झारखंड आंदोलन की वैचारिक धुरी थीं। उन्होंने सैकड़ों ग्रामीण महिलाओं को संगठित किया, डायन प्रथा के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, आदिवासी भाषाओं को बचाने का अभियान चलाया और

अनेक जनांदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई। उन्होंने प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया भाषा में अनुवाद किया– जो एक सांस्कृतिक सेतु है। उनके लिए भाषा कोई औपचारिक माध्यम नहीं, बल्कि अस्तित्व की लड़ाई थी।

झारखंड आंदोलन, जो दशकों तक चला और जिसमें पुरुषों की भागीदारी को ही मुख्यधारा में दिखाया गया – उस आंदोलन की स्त्री चेतना की पहली अगुआ डॉ. रोज केरकेट्टा ही थीं। वे सिर्फ मंचों पर नारे लगाने वाली नहीं थीं – वे गांव-गांव जाकर आदिवासी स्त्रियों को संगठित करती थीं, उन्हें बताती थीं कि "झारखंड केवल पुरुषों का नहीं, मातृभूमि है – तो उसकी रक्षा में माँ-बहनों की भागीदारी भी अनिवार्य है।" वह चाहती थीं कि आदिवासी स्त्री केवल 'संवेदना' का प्रतीक न बने, बल्कि 'राजनीतिक भागीदारी' की धुरी बने। इसी सोच ने महिला मोर्चों को जन्म दिया, जिसमें वे आगे-आगे रहीं।

सत्तर के दशक से झारखंड आंदोलन ने जब तेज़ी पकड़ी, रोज केरकेट्टा की भूमिका स्पष्ट होती गई। वे राजनीतिक रूप से झारखंड पार्टी, जेपी आंदोलन और बाद के जनांदोलनों से जुड़ीं, लेकिन उनकी कार्यशैली अलग थी। वे 'भीड़' नहीं, 'विचार' थीं। जब पुरुष नेतृत्व आंदोलन को 'राज्य निर्माण' तक सीमित कर रहा था, तब रोज दी कहती थीं – "हम झारखंड राज्य नहीं चाहते, हम झारखंड समाज चाहते हैं– जिसमें हमारी भाषा, स्त्री, जंगल, खेत, त्योहार और परंपराएं जीवित रहें।"

वे गांव-गांव घूमीं, स्त्रियों को संगठित किया, लोकसभा से लेकर लोकगीत तक के संवाद को जोड़ने की कोशिश की। उनका नारा था – "झारखंड आदिवासियों का है, और आदिवासी समाज में स्त्री केंद्र में होती है – इसलिए झारखंड की रचना में स्त्री को केंद्र में होना चाहिए।"

रोज दी ने झारखंड के उन संघर्षों में हिस्सा लिया जहां लोग जल, जंगल, जमीन के लिए लड़े। वे सीधे मोर्चे पर थीं – कोयल-कारो परियोजना के विरोध, डायन प्रथा उन्मूलन, महिला सशक्तीकरण और आदिवासी पंचायत व्यवस्था की पुनर्रचना – इन सभी में उनकी भागीदारी रचनात्मक और राजनीतिक दोनों थी। उनका कहना था –

"सत्ता से संवाद नहीं, प्रतिरोध जरूरी है, जब तक वह हमारे स्वत्व को नहीं समझती।"

उत्तर-औपनिवेशिक दासता से मुक्ति का अजेंडा

रोज केरकेट्टा यह भलीभांति समझती थीं कि अंग्रेज़ भले चले गए हों, लेकिन औपनिवेशिक मानसिकता आज भी हमारे प्रशासन, न्याय, विकास और शिक्षा प्रणाली में जड़ें जमाए बैठी है।

उनका लेखन और भाषण इस बात को बार-बार रेखांकित करता है कि जब तक आदिवासी समाज अपने ढंग से सोचने, पढ़ने, बोलने, लिखने, फैसले लेने और जीने के अधिकार को पुनः प्राप्त नहीं करता – आज़ादी अधूरी है। उन्हें रानी दुर्गावती सम्मान, अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान, प्रभावती सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। लेकिन उनका असली पुरस्कार था – गांव की औरतों की आँखों में उनका प्रतिबिंब, नदी किनारे गीत गाते बच्चों की मुस्कान, और आदिवासी युवाओं में पैदा होता आत्मविश्वास।

रोज केरकेट्टा का नारीवाद पश्चिमी या शहरी ढांचे में नहीं आता। उनका स्त्रीवाद ग्रामसभा, खेत, जंगल, बच्चे पालने, गीत गाने, और जल लाने के साथ-साथ निर्णय लेने की प्रक्रिया से जुड़ा था।

वे कहती थीं – "मेरी बहनें पढ़ी-लिखी नहीं हैं, लेकिन वे जानती हैं न्याय क्या होता है। हमें अपने नारीवाद को उन्हीं की बोली में समझना और समझाना होगा।"

रोज दी का नारीवाद 'नारीवाद' शब्द से बड़ा था। उनकी चेतना 'स्वाभाविक स्त्री चेतना' थी – जिसमें स्त्री सिर्फ पीड़िता नहीं, सृजनकर्ता थी। वे बार-बार कहती थीं – "हमारी औरतें स्कूल नहीं गईं, लेकिन जंगल की व्यवस्था जानती हैं, पंच फैसले करती हैं, बच्चों को बड़ा करती हैं, खेती करती हैं – वे मूर्ख नहीं, विशारद हैं।" उन्होंने आदिवासी समाज को 'पुरुष-प्रधान' समाज कहने की शहरी समझ का विरोध किया, और कहा कि हमारे समाज में निर्णय ग्रामसभा लेती है – और वहाँ स्त्रियाँ बराबरी से बैठती हैं।

खामोशी में भी संघर्ष

लगभग एक दशक से वे अस्वस्थ रहीं, शारीरिक रूप से सक्रिय नहीं रहीं, लेकिन उनकी आंखों में झारखंड की चिंता वैसी ही थी – गहरी और सुलगती हुई। वे जिस बिस्तर पर थीं, वह बिस्तर नहीं था – वह झारखंड की पीठ थी, जिस पर न जाने कितने विचार, कितने स्वप्न, कितनी रणनीतियाँ आकार ले रही थीं।

डॉ. रोज केरकेट्टा के जाने के साथ एक युग समाप्त नहीं हुआ, बल्कि उनका शब्द, उनका प्रतिरोध और उनकी ममता – अब हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी बन गई है। उनकी बेटी वंदना टेटे, जो स्वयं एक सक्रिय कार्यकर्ता हैं, इस विरासत को आगे बढ़ा रही हैं। पर सच यही है कि रोज दी जैसी हस्तियाँ विरले होती हैं– वे केवल व्यक्ति नहीं, एक विचार होती हैं।

वे कहीं गई नहीं हैं – वे हमारे गीतों में, आंदोलनों में, हमारी बेटियों की आँखों में, हमारी ग्रामसभाओं की चेतना में हैं। उनकी स्मृति को शत-शत नमन।

डा. रोज केरकेट्टा : एक संस्मरण

– बिन्नी

डॉ. रोज केरकेट्टा, हम सब के बीच रोज दी के नाम से लोकप्रिय थीं। उनका नाम सुनते ही एक साथ कई तरह की छवि हमारे जेहन में उभरती है क्योंकि वह अपने जीवन काल में अलग-अलग क्षेत्रों व मंचों पर अपनी मौजूदगी अलग-अलग भूमिका में निभाती रहीं। शिक्षा के क्षेत्र में लोग उन्हें प्रोफेसर, लेखक, कवि, साहित्यकार के रूप में जानते हैं। झारखण्ड आंदोलन में बौद्धिक मोर्चा की सदस्य रहीं। महिला आंदोलन के क्षेत्र में हमारी पीढ़ी की महिलाओं की अगुआ और प्रेरणास्त्रोत के रूप में जानी जाती रहीं। ऐसा था उनका प्रतिभावान व्यक्तित्व। आज से लगभग 27-28 वर्ष पूर्व, पहली बार रोज दी से मेरी मुलाकात एकता महिला मंच झारखण्ड की राज्य स्तरीय कार्यक्रम में हुई थी। उस वक्त एकता महिला मंच, झारखण्ड में महिलाओं के सामाजिक-राजनैतिक सशक्तीकरण के उद्देश्य से निर्मित झारखण्ड की 25 महिला नेतृत्वकारी संगठनों का मंच था, जो महिलाओं के राजनैतिक सशक्तीकरण को केन्द्रित करके पंचायत चुनाव में ग्रामीण महिलाओं को सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार कर रही थी। इस मंच के कार्यक्रमों में रोज दी समय समय पर प्रशिक्षक, वक्ता के रूप में आती थीं। उनका सरल, शांत स्वभाव के कारण मैं जल्दी ही उनके बहुत करीब हो गई। उनके सरल स्वभाव व मिलनसार व्यक्तित्व के कारण मुझे उनसे बात करने में या कुछ सलाह-मार्गदर्शन लेने में कभी कोई हिचक या डर का एहसास नहीं हुआ क्योंकि वह बहुत विनम्र व संवेदनशील थीं। किसी की बातों को बहुत शांति से सुनती थीं और सुनकर

बेहतर सलाह और हमेशा प्रोत्साहित करने का काम करती थीं। तब से लगातार मुझे समय-समय पर उनका मार्गदर्शन मिलता रहा। इसके अलावा 'जुड़ाव' व 'संवाद' संस्था के कार्यक्रमों व अलग अलग मंचों व फोरम में उनसे हमेशा मुलाकात होती रही। सामाजिक क्षेत्र में आने के बाद, जिनसे बहुत कुछ सीखा– वो रोज दी हैं। उनके सानिध्य में रहकर मुझे उनके विचारों, वक्तव्यों व मार्गदर्शन से अपने आपको निखारने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके लिए मैं अपने आप को बहुत भाग्यवान मानती हूँ।

रोज दी का साहित्यिक जगत में बहुमुल्य योगदान रहा है। इन्होंने अपनी लेखनी से समाज के कई तबके को जगाने और आपस में जोड़ने का काम किया। इन्होंने आदिवासी भाषा-साहित्य, संस्कृति और स्त्री सवालों को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रमुखता से उठाया है। ये न सिर्फ आदिवासी महिला बल्कि समग्र महिला समाज के मुद्दों पर आवाज उठाती रहीं। झारखण्ड की एक विशेष सामाजिक कुरीति व अंधविश्वास के तहत महिलाओं को डायन बोला जाता है। डायन प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए भी लगातार आवाज उठाती रहीं और इस प्रथा से पीड़ित कई महिलाओं को व्यक्तिगत रूप से सहयोग भी किया करती थीं। वह न सिर्फ झारखंड बल्कि राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। अपनी पीढ़ी में, आदिवासी महिला समुदाय से रोज दी का व्यक्तित्व एक मिशाल है। अपने देश भारत में, जहां इक्कीसवी सदी में भी सामान्य समुदायों की बेटियों के लिए सरकार बेटी पढ़ाओ अभियान चला रही है और अभी भी आदिवासी समुदाय में महिला शिक्षा दर

बहुत कम है। ताज्जुब की बात यह है कि आजादी से पूर्व 5 दिसम्बर 1940 को, सिमडेगा के छोटे से गांव– कसीरा सुन्दरा टोली – गांव में जन्मी एक आदिवासी बच्ची, जो अल्पसंख्यक खड़िया समुदाय से थी – पढ़ लिख कर इतनी प्रतिभावशाली कैसे बनी? इनके पारिवारिक इतिहास से पता चलता है कि इनके पिता उस दौर में लोकप्रिय जननेता, शिक्षक, संस्कृतिकर्मी व समाजसेवी थे। पिता की प्रोत्साहन व प्रेरणा तथा अपनी कड़ी लगन, मेहनत एवं दृढ़ संकल्प के बल पर रोज दी पढ़-लिख कर बहुत आगे बढ़ गईं और उन्हें समाज के कई क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त हुई। रोज दी अपने पिता की जन्म शताब्दी पर 2002 में अपने पिता की समाज सेवा की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए 'प्यारा केरकेट्टा फांउडेशन' की स्थापना की और आदिवासी भाषा-संस्कृति के संरक्षण के लिए सतत् कार्य करती रहीं। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि वे वंचित समाज की सशक्त आवाज बनीं। अपने जीवन में रोज दी की अनगिनत रचनाएं प्रकाशित हुईं, जिनमें कहानी संग्रह के अतिरिक्त अनेक शोध ग्रंथों का अनुवाद, खड़िया कविता संग्रह, लोक कथा, नाटक, जीवनी व गद्य-पद्य संग्रह प्रकाशित हुई है। अपनी रचनाओं में महिलाओं के मुद्दे को गहरी संवेदनशीलता के साथ संबोधित किया है। उनके सामाजिक योगदान के लिए उन्हें कई सम्मान व प्रतिष्ठित पुरस्कारों से भी नवाजा गया। आज की तारीख में जब हम सबकी प्रिय रोज दी हमारे बीच नहीं हैं, उनका निधन साहित्य जगत, आदिवासी व महिला आंदोलन के लिए अपूरणीय क्षति है। लेकिन उनका कार्य, उनके विचार और उनकी रचनाएं हमें और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेंगी। हम सबको उनकी संघर्ष की भावना हमेशा याद रहेगी।

झारखंड को गढ़ती एक आदिवासी बुद्धिजीवी महिला की जिजीविषा!

– ज्योत्सना तिर्की

रोज दी - यही मेरा संबोधन उनके लिए हमेशा से रहा है। उनके बारे में मैंने ऑल झारखंड स्टूडेंट्स यूनियन (आजसू) की केंद्रीय समिति की बैठकों में अनेकों बार सुना था। केन्द्रीय समिति के सभी लोग उन्हें "दीदी" ही कहा करते थे। यह 1986-87 की बात है, उनका युवा छात्रों को उत्साहित और दिशा निर्देशन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जब झारखंड समन्वय समिति (JCC) बनी, जिसमें झारखंड के सभी पार्टियाँ और संगठन अलग राज्य के आंदोलन के लिए एकजुट हुए, तो थिंक टैंक माने जाने वाले बुद्धिजीवियों की बैठकों में आजसू के अग्रणी नेतृत्वकारी भी शामिल होने लगे। ऐसी ही एक बैठक, जो रांची के जेवियर समाज सेवा संस्थान में हुई थी, यहीं रोज दी से मिलने का अवसर मिला।

साधारण सी दिखने वाली, साधारण सी साड़ी ब्लाउज में जब वे बोलती थीं तो सब ध्यान लगा कर सुनते थे। उनकी बातों के सार मुझे हमेशा प्रेरित करता रहे हैं कि औरतें-महिलाएं समाज की धूरी हैं – उनके बिना कोई लड़ाई नहीं जीती जा सकती। संघर्ष में जीत चाहिए तो युवा महिलाओं को आगे लाना होगा, उन्हें उचित स्थान देना होगा। उन्हीं के निर्देश पर कालांतर में आजसू की महिला विंग बनी।

हालांकि बाद की बैठकों में मैं शामिल नहीं हो पाई परन्तु उनकी उस बैठक में उपरोक्त वाक्य बोलते हुए उनकी नजर मुझ पर टीक सी गयी थी, जैसे वे मुझसे कुछ विशेष अपेक्षा कर रही हों, बतिया रही हों। बाद की हर बैठकों में उन्होंने इन्हीं बातों/आशय को बार बार दोहराया, इसकी जानकारी केंद्रीय और जिला कमेटियों में दी जाती थी। इसका असर हुआ की 35 सदस्यीय केंद्रीय समिति में 3 महिला संयोजक चुनी गईं और जिलों में महिला/छात्रा विंग बनाये गये।

डॉ. रोज केरकेट्टा, लेक्चरर रहते हुए भी, उनका जीवन उनके सामाजिक संघर्षों और आदिवासी समाज के प्रति समर्पण से गहराई से जुड़ा हुआ था। आंदोलन में उनकी भूमिका सिर्फ अलग राज्य तक सीमित न रह कर झारखंड के नव निर्माण में भी जीवनपर्यंत ही वे सहभागी समाज की पक्षधर थीं। अन्याय, शोषण के विरुद्ध उन्होंने न सिर्फ लिखा, बल्कि आवाज़ भी बन कर उभरीं।

राजनीति में महिलाओं की पैरोकार बनीं। झारखंड बनने के बाद हालांकि झारखंड की सरकारों ने उन्हें कोई सम्मान नहीं दिया, परन्तु उनका व्यक्तित्व इसका मोहताज भी न था। उन्हें झारखंड सरकार की ओर से एक मात्र कथाकार-साहित्यकार वर्ग में 'पगहा जोरी रे घाटो' के लेखन के लिए सम्मान मिला। इसे झारखंड का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि उनके योगदान को नजरअंदाज किया गया।

वे सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद् और आदिवासी अधिकारों की समर्थक थीं। उन्होंने आदिवासी संस्कृति, भाषा, आदिवासी शिक्षा और सामाजिक मुद्दों पर भी लेखन कार्य किया है। अनेकों लेख और शोधपत्र प्रस्तुत किये। वर्ष 2008 में मध्यप्रदेश की सरकार ने उन्हें साहित्य सम्मान "रानी दुर्गावती पुरस्कार से सम्मानित

किया। वर्ष 2012 में मुजफ्फरपुर (बिहार) में उन्हें अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान से नवाजा गया। वर्ष 2014 में उन्हें प्रभावती सम्मान मिला। उन्हें स्थानीय सामाजिक संस्थाओं और शैक्षणिक संस्थानों द्वारा साहित्यिक योगदान के लिए कई बार सम्मानित किया गया।

उनका कार्य शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन, सामाजिक न्याय और राजनीतिक भागीदारी जैसे क्षेत्रों में फैला हुआ था। महिला सशक्तीकरण में उनका योगदान आदिवासी महिलाओं और लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान रहा है। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा अभियान चलाकर महिलाओं को साक्षर बनाने और उन्हें उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करने का काम किया।

महिलाओं को उनके कानूनी अधिकारों (जैसे– संपत्ति का अधिकार, हिंसा के खिलाफ कानूनी सुरक्षा) के बारे में जागरूक किया। आदिवासी समाज में महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा, जैसे– जादू-टोना के आरोप में प्रताड़ना, डायन हत्या, दहेज हिंसा और भूमि अधिकार से वंचित करने के मामलों के खिलाफ आवाज उठाई। महिलाओं को कानूनी सहायता और परामर्श देने के लिए संगठनों से जोड़ा। पंचायती राज संस्थाओं और स्थानीय प्रशासन में भागीदारी के लिए प्रेरित किया।

उन्होंने महिलाओं को नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए प्रशिक्षण दिया, ताकि वे सार्वजनिक नीति निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकें। उन्होंने महिलाओं को उनकी मातृभाषा (जैसे– हो, संथाली, खड़िया, कुड़ुख, मुंडारी) में शिक्षित करने की वकालत की।

डॉ. रोज केरकेट्टा ने आदिवासी महिलाओं को शिक्षित, आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने के लिए बहुआयामी प्रयास किए। उनका मानना था कि महिलाओं की प्रगति के बिना आदिवासी समाज का सही विकास नहीं हो सकता।

डॉ. रोज केरकेट्टा ने झारखंड आंदोलन में एक सक्रिय भूमिका निभाने वाली प्रमुख महिला नेतृत्वकर्ताओं में से एक रही हैं। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य झारखंड को एक अलग राज्य के रूप में मान्यता दिलाना था, ताकि आदिवासी समुदायों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वायत्तता मिल सके। झारखंड आंदोलन में पुरुष प्रधान नेतृत्व के बीच डॉ. केरकेट्टा ने आदिवासी महिलाओं को संगठित करने का काम किया। उन्होंने महिलाओं को जागरूक किया कि अलग राज्य का गठन उनके भूमि अधिकार, शिक्षा और रोजगार के अवसरों को सुरक्षित करेगा। उन्होंने महिलाओं को प्रदर्शनों, रैलियों और सभाओं में बड़ी संख्या में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

डॉ. केरकेट्टा ने आंदोलन के दौरान आदिवासियों के भूमि अधिकारों, प्राकृतिक संसाधनों पर हक और सांस्कृतिक पहचान को प्रमुख मुद्दा बनाया। उन्होंने तर्क दिया कि झारखंड अलग राज्य बनने से आदिवासी समुदायों का शोषण कम होगा और विकास योजनाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित होगी।

उन्होंने अहिंसक तरीकों - जैसे जनसभाओं, पत्रकारिता और सामाजिक संगठनों के माध्यम से आंदोलन को मजबूत किया। झारखंड के ग्रामीण इलाकों में जाकर लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया।

डॉ. रोज केरकेट्टा ने झारखंड आंदोलन

में न केवल एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में, बल्कि महिलाओं और आदिवासियों की प्रतिनिधि के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके इस सामूहिक प्रयासों आंदोलन को जन-आंदोलन का स्वरूप देने में मदद की, जिसके परिणामस्वरूप 15 नवंबर 2000 को झारखंड भारत का 28वाँ राज्य बना।

डॉ. रोज केरकेट्टा ने 1980 से 2000 तक चले झारखंड आंदोलन के विभिन्न चरणों में सक्रिय भागीदारी निभाई। उनकी भूमिका मुख्यतः संगठनात्मक, जनजागरण और महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने पर केंद्रित थी। हालांकि उनकी गतिविधियों का विस्तृत कालक्रम सीमित स्रोतों में उपलब्ध है, **फिर भी कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं**

- 1990–1995: यह राजनीतिक और सामाजिक दबाव का चरण था, जिसमें उन्होंने रांची और दिल्ली (राष्ट्रीय स्तर पर) की वार्ताओं में भाग लिया।
- 1992–93 में रांची में आयोजित बड़े आंदोलनकारी सम्मेलनों में भाग लिया, जहाँ अलग राज्य की माँग को तीव्र किया गया।
- महिला समूहों को संगठित कर पत्रकारों और मानवाधिकार संगठनों के समक्ष झारखंड के मुद्दे उठाए।
- उन्होंने 15 नवंबर 2000 को झारखंड राज्य बनने के बाद भी महिलाओं और आदिवासियों के अधिकारों की लड़ाई जारी रखी।

कुछ प्रमुख घटनाएँ जहाँ उनकी सक्रियता दर्ज हैं :

- 1970 के दशक में अनेक महिला सम्मेलन आयोजित किए, ताकि वे एकजुट होकर अपनी आवाज बुलंद कर सकें, अपने शोषण का प्रतिकार कर सकें, और अपने अधिकारों की माँग कर सकें। उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि इन सम्मेलनों के माध्यम से झारखंड आंदोलन में महिलाओं की भूमिका उजागर हो।
- 1980 के दशक के अंत में, उन्होंने आंदोलन की माँगों पर चर्चा के लिए केंद्र सरकार द्वारा दिल्ली में आयोजित एक संवाद में झारखंड समन्वय समिति का प्रतिनिधित्व किया।
- झारखंड समन्वय समिति (JCC) के माध्यम से आंदोलन में सक्रिय रहीं और आदिवासी हितों के लिए काम किया।
- 1995 में आयोजित रांची का "झारखंड महिला सम्मेलन" – जहां उन्होंने महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने पर बल दिया।
- 1997 में रांची में आयोजित "राष्ट्रीय महिला सम्मेलन" में उन्होंने झारखंड-बिहार के संयुक्त आयोजन और नेतृत्व की भूमिका निभाई।
- 1998 में दिल्ली की "आदिवासी अधिकार रैली" में भाग लिया और राजनीतिक नेताओं से प्रत्यक्ष संवाद किया।
- शांतिपूर्ण विरोध के मामले में झारखंड पुलिस आर्काइव्स में 1994-2000 के दौरान उनके खिलाफ 3 एफआईआर दर्ज की गईं।

उनके कुछ प्रमुख योगदान इस प्रकार हैं :-

- डॉ. रोज केरकेट्टा का झारखंड आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने आदिवासी समुदाय के अधिकारों और हितों के लिए काम किया और झारखंड आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- उन्होंने बालिका और महिलाओं को संगठित और शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिहार शिक्षा परियोजना की महिला समाख्या की कमान संभालते हुए उन्होंने महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया।
- डॉ. रोज केरकेट्टा ने महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाने पर जोर दिया। वे जीवन पर्यंत 'आधी दुनिया' पत्रिका की संपादक रहीं, जो महिलाओं के मुद्दों को उठाने का एक माध्यम है।
- उन्होंने आदिवासी समुदाय के जल, जंगल, और जमीन के अधिकारों के लिए जीवन भर संघर्ष किया। वे झारखंड आंदोलन की एक प्रमुख हस्ती थीं और आदिवासी भाषा, संस्कृति और पहचान के संरक्षण के लिए समर्पित रहीं।
- उन्होंने आदिवासी समुदायों के पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरण के साथ उनके संबंध को समझने और प्रलेखित करने का कार्य किया।
- डॉ. केरकेट्टा ने आदिवासी महिलाओं के अधिकारों के लिए आवाज उठाई और उनके सशक्तीकरण के लिए निरंतर कार्य किया।
- उन्होंने झारखंड आंदोलन में महिलाओं की बौद्धिक और राजनीतिक भागीदारी की जोरदार वकालत की।
- वे महिलाओं को लिखित और वैधानिक अधिकार दिलाने की प्रबल पक्षधर थीं और इसके लिए उन्होंने निरंतर संघर्ष किया।
- 2002 में उन्होंने 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य आदिवासी भाषा, साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा देना था।
- उन्होंने आदिवासी संस्कृति और

साहित्य को समृद्ध करने के लिए कार्य किया और झारखंड आंदोलन में सांस्कृतिक पहचान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना।

जब रोज दी महिला सामख्या की कमान संभाले हुई थीं, तब उन्होंने मेरे झोलटंग आंदोलनकारी और सामाजिक कार्यकर्ता की तरह काम करने के तरीके को देख कर चिंता व्यक्त की थी और बड़े अधिकार से कहा था कि महिला सामख्या में रिसोर्स पर्सन की हैसियत से जॉइन कर लूँ। मैंने दो दिन सोचने के लिए समय मांगा, फिर दो दिनों के बाद उन्हें सूचित किया की मैं आपको दिकू लोगों के बीच काम करते देख कर परेशान हो जाती हूँ। जब वे आपके साथ अमानवीय सा व्यवहार करते हैं, वे न आपकी उम्र, न पद, न अनुभव का जरा भी लिहाज करते, फिर भी आप उनके अनुचित व्यवहार को नजरअंदाज कर अपने काम में लगी रहती हैं। मैं यह सब नहीं कर पाऊंगी, मैं शांत और चुप नहीं रह सकूँगी। मैं झगड़ा करूंगी। कोई मुझे या आपको कुछ कहे, या किसी झारखंडी को अपमानित करे– वह सब मेरे बर्दाश्त के बाहर है।

मेरे ऐसा कहने पर उन्होंने कहा कि तुम सोचो महिलाओं के साथ काम करने का कितना अच्छा अवसर है। झारखंड की जो कल्पना तुम करती हो, उसमें तुम्हरा योगदान इस तरीके से भी हो सकता है। पर उनके बार बार समझाने पर भी मैं नहीं मानी कि महिला सामख्या में दिकू विचारधारा वाले लोगों के बीच काम करुँ। रोज दी मेरे अंदर के युवा जोश, स्वाभिमान और अक्खड़पन से भी भली भांति परिचित थीं।

फिर एक दिन उनके घर पर रात को रुकना पड़ा, क्योंकि खूंटी में महिलाओं की आमसभा से लौटने में देर शाम हो गई थी। तब भी उन्होंने मुझे रोजगार, आर्थिक स्वालंबन पर लंबे लेक्चर दिये। मैं चुपचाप सब सुनती रही और मन ही मन कुलबुलाती रही कि फिर आंदोलन कौन करेगा ? मैंने तो वर्षों पहले अपने घर में कह दिया था कि पाँच भाई-बहनों में से मुझे आंदोलन को समर्पित मान लिया जाए।

फिर अगली सुबह, रोज दी के उठने से पहले ही मैं घर से निकल गई। मुझे तब अक्सर सपने आते थे कि झारखंड अलग राज्य बने जिसमें हमारा स्वशासन हो, हमारी पहचान हो, सभी फैसले सामूहिक निर्णय से हों, सहभागिता हो, बराबरी का हक हो, और जल-जंगल-जमीन पर हमारा हक सुनिश्चित हो।

झारखंड आंदोलन में रोज दी की शिरकत छात्र आंदोलन से भिन्न थी। वे आंदोलन के दौरान भी झारखंड को गढ़ रही थीं। यह समझदारी मुझे अपने 20 बर्ष की उम्र गुजरने बाद समझ में आई। अगले दो-तीन सालों तक मैं उनसे अकेले मिलने से कतराती रही, इस डर से कि कहीं वे मुझे मेरे रास्ते से खींच न लें।

पर जब मैंने उन्हें सही मायनों में जाना, तो पाया कि वे साहसी और निडर व्यक्तित्व की धनी थीं। उन्होंने अपने जीवन में कई चुनौतियों का सामना किया और कभी हार नहीं मानी। वे आदिवासी संस्कृति के प्रति गर्व महसूस करती थीं और इसके संरक्षण व प्रचार के लिए निरंतर काम करती रहीं।

डॉ. रोज केरकेट्टा के विचारों में वामपंथी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है, जो सामाजिक न्याय और समानता के प्रति समर्पित थीं। डॉ. बी.पी. केसरी, डॉ. रामदयाल मुंडा, बीर भारत तलवार, ऐ. के. राय, जैसे प्रबुद्धजनों की पंक्ति में खड़ी एक मात्र महिला होते हुए भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में सक्रिय थीं। उनकी सक्रियता और योगदान ने न सिर्फ झारखंड आंदोलन को मजबूती दी, बल्कि आदिवासी समुदायों के अधिकारों और हितों के लिए महत्वपूर्ण कार्य करती रहीं।

झारखंड के नव-निर्माण में भी उनकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। उन्होंने कभी चुनाव लड़ने का मार्ग नहीं चुना, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए वैकल्पिक रास्तों पर चलकर निरंतर कार्य करती रहीं। उनकी जीवन यात्रा, जिसे उन्होंने अपनी इच्छा से चुना और जिया, वह हमें सिखाती है कि लेखक, बुद्धिजीवी या अकादमिक जगत का शिक्षक टूटती-बिखरती दुनिया को अनदेखा नहीं कर सकते हैं, बल्कि उसे बचाने और सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए सदैव प्रत्यनशील रहना चाहिए। डॉ. रोज केरकेट्टा ने कभी भी सत्ता-सुख पाने के लिए जनवादी आंदोलन से मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि उन्होंने रोशनी की मशाल उठाकर उसकी अगुआई की। कई सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में उनकी सक्रिय भागीदारी आज के झारखंड की नींव में गहराई तक समाई हुई है।

झारखंड के शोषितों-वंचितों की सशक्त आवाज थीं रोज दीदी

– अनुज बेसरा

रोज केरकेट्टा से 'डॉ रोज केरकेट्टा' बनना और फिर अपने कृतित्व व व्यवहार से सर्वसामान्य होकर 'रोज दीदी' बन जाना कोई आसान कार्य नहीं था। सिमडेगा जैसे सुदूर जिले की शंख नदी के किनारे जन्म लेना और फिर राष्ट्रीय पटल पर छा जाना तथा 1970 के दशक में, जब अधिकांश लोग दो जून की रोटी के लिए संघर्षरत थे, उस दौर में आदिवासी महिलाओं के बौद्धिक आंदोलन का नेतृत्व करना डॉ रोज केरकेट्टा की एक महान उपलब्धि थी।

पांच दिसंबर 1940 को सिमडेगा जिले के शंख नदी के किनारे स्थित कइसरा सुंदरा टोली नामक आदिवासी गांव में जन्मी डॉ रोज केरकेट्टी का स्वर्गवास 17 अप्रैल 2025 को रांची स्थित अपने आवास में हुआ। उनके पिता डॉ प्यारा केरकेट्टा स्वयं भी एक प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। उनसे ही लेखन का संस्कार रोज दीदी को विरासत में मिला। मात्र 25 वर्ष की उम्र से ही वह झारखंड के प्रति समर्पित हो गयी थीं। उस समय, जब जयपाल सिंह मुंडा राजनीतिक स्तर पर झारखंड आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे, रोज दीदी भी अपने लेखों के माध्यम से आंदोलन को वैचारिक धार प्रदान करने लगी थीं।

1970 के दशक में, जब डॉ रामदयाल मुंडा विदेश छोड़कर झारखंडियत का कर्ज चुकाने स्वदेश लौटे, उस समय झारखंड आंदोलन के बौद्धिक परिदृश्य पर तीन नाम सबसे प्रमुखता से गूंजते थे। डॉ रामदयाल मुंडा, बीपी केसरी और डॉ रोज केरकेट्टा आदिवासी भाषा-साहित्य, संस्कृति और स्त्री सवालों पर रोज दीदी ने कई देशों

की यात्राएं की और राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी हुईं। खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन (शोध ग्रंथ), प्रेमचंदाअ लुङकोय (प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया अनुवाद), सिंफोय सुलोओ (खड़िया कहानी संग्रह), हेपढ़ अवकडिज बेर (खड़िया कविता एवं लोक कथा संग्रह), पगहा जोरी-जोरी रे घाटो (हिंदी कहानी संग्रह), सेंभी रो डकई (खड़िया लोकगाथा) खड़िया विश्वास के मंत्र, अबसिव मुरडअ (खड़िया कविता संग्रह) और स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति आदि उनकी प्रमुख रचनाएं रही हैं। इसके अलावे भी कई पत्र- पत्रिकाओं में लगातार आलेख और विचार छपते रहे।

'पगहा जोरी-जोरी रे घाटी' रोज दीदी की प्रमुख रचनाओं में से एक हैं। इस कथा संग्रह में आदिवासी समाज की महिलाओं की समस्या, विस्थापन और चुनौतियों जैसे मुद्दों पर लिखी गयी कहानियां हैं। इस कथा संग्रह को पाठकों ने काफी पसंद किया। इस किताब को पढ़ने के बाद यह बात समझ में आती है कि "कम कहकर सबकुछ कह देना" रोज दीदी की लेखनी की पहचान थी। स्थानीय मुद्दों को सहजता और व्यापक रूप से साहित्यिक रूप देकर लोगों के लिए पठनीय बनाना और उसे चर्चा का केंद्र बनाना रोज दीदी की शोषित समाज को भेंट है, यों इन विषयों पर आज भी चर्चा गहनता से हो पा रही है। प्रेमचंद की कहानियों का खड़िया भाषा में अनुवाद करना खड़िया भाषा को राष्ट्रीय पटल पर खड़ा कर दिया। इस कृति ने स्थानीय भाषा को राष्ट्रीय फलक पर लाने के लिए एक सेतु का काम किया है। निश्चित रूप से अन्य स्थानीय लेखक भी इससे प्रभावित हुए होंगे।

स्थानीय भाषा के प्रति उनका लगाव इस बात से समझ आती है, जब 2022 में धनबाद और बोकारो के इलाकों में झारखंडी भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन के लिए आंदोलन चल रहा था तब उन्होने उस आंदोलन का न सिर्फ समर्थन किया बल्कि बाहरी भाषा का विरोध करते हुए विश्वंभर फाउंडेशन द्वारा दिए जा रहे विश्वंभर साहित्य भारती सम्मान-2022 को यह कहते हुए लेने से मना कर दिया कि "जिस भाषा में मैं जीती हूं, अगर उसे सम्मान नहीं दिया गया, तो मुझे सम्मान लेकर क्या करना।"

अपने जीवन काल में ही रोज दीदी ने अपनी विद्वता और लगन के बल पर

सिमडेगा जैसे पिछड़े जिले में सिमडेगा कॉलेज और एसएस उच्च विद्यालय सिमडेगा जैसे आज के समय में प्रतिष्ठित संस्थानों की नींव रखने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके अंदर विकास की धारा में पिछड़े रह गये समाज के लोगों को शिक्षित बनाने का जुनून काफी था।

रोज दीदी की याददाश्त जीवन के अंतिम पड़ाव में भी बहुत मजबूत रही। वे व्यक्ति को देखकर ही नाम से पहचान लेती थी। अपने जीवन में उन्हें ब्रेस्ट कैंसर जैसी बीमारी का सामना करना पड़ा लेकिन वे मजबूती से जनमानस के लिए खड़ी रहीं। घर में ही एक दुर्घटना के दौरान उनका पैर टूट गया था। लेकिन वे अपने मजबूत इरादों और हौसलों के कारण पुनः ठीक हो गयीं। बाद में एक बार पुनः वह गिरीं, जिसमें उनकी कमर टूट गयी। इस घटना के बाद वे अपने हजारों किताबों के संग्रह के साथ विस्तर में आ गयीं, लेकिन उनका साहित्य प्रेम और शोषण के खिलाफ बुलंद आवाज कम नहीं हुई।

डॉ रोज केरकेट्टा को जो विरासत अपने पिता से मिली थी, उसे अपने तक ही सीमित नहीं रखी। उस लेखनी कला को अपनी अगली पीढ़ी पुत्री वंदना टेटे को सौंप कर अपने कर्तव्य का निर्वहन भी किया। वंदना टेटे भी अपनी मां के समकक्ष होकर आदिवासी समाज, विस्थापन के मुद्दे, जेंडर संवेदनशीलता, शोषण, अत्याचार और संघर्ष जैसे विषयों पर बखूबी सशक्त लेखन कर प्रसिद्धि हासिल कर चुकी है।

प्रसिद्ध आलोचक और साहित्यकार रविभूषण जी कहते हैं जिस प्रकार महाश्वेता देवी ने अपनी पीढ़ी की बौद्धिक साहित्यिक परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया उसी प्रकार डॉ रोज केरकेट्टा का भी जीवन है। उन्होंने भी तीन पीढ़ी तक तक बौद्धिकतावाद और साहित्यवाद को आगे बढ़ाने का काम किया है।

आज रोज दीदी अपने कृतियों से जो साहित्यिक और संघर्षनात्मक पौध रोपण कर गई हैं। उसका पेड़ बनना और फल देना बाकी है। सरकार और जनप्रतिनिधियों को भी चाहिए कि उनके कारवां को आगे बढ़ाएँ और उन्हें उचित सम्मान से सुशोभित कर एक आदर्श प्रस्तुत करें।

(प्रभात ख़बर से साभार)

श्रद्धांजलि

कार्यकर्ता की कलम से

डॉ. रोज केरकेट्टा आदिवासी और हिंदी साहित्य लेखन में एक प्रमुख लोकप्रिय नाम है। झारखंडी समाज के महत्वपूर्ण सवालों को सृजनशील अभिव्यक्ति देने के साथ ही जन आंदोलन को बौद्धिक नेतृत्व प्रदान करने और संघर्ष की हर राह में वे सबसे आगे रही हैं। आदिवासी भाषा, साहित्य संस्कृति और स्त्री सवालों पर डॉ. रोज करकेट्टा आजीवन मुखर रहीं। वह राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित होने के बावजूद काफी नम्र और सरल रही।

– **महेश मिश्रा**

डॉ. रोज केरकेटटा से मेरी पहली मुलाकात एवं बात-चीत एक सेमिनार में हुई। सेमिनार जेवियर इंस्टीयुट में आयोजित था। उस समय मेरी उनसे काफी बातचीत हुई थी। मुझे उनको जानने समझने का मौका मिला। काफी शांत स्वभाव, धीमे बोलना, उनके व्यक्तित्व को और भी निखार देता था। 'जुड़ाव' के समय मुझे कार्यालय की ओर से पत्राचार की जिम्मेवारी मिली थी अभियान, नुनवा-नुनिया, देशज स्वर, आधी दुनिया या कार्यालय की ओर से रांची में आयोजित होनेवाले कार्यक्रम के निमंत्रण भेजा करता था। आधी दुनिया की संपादक के तौर पर उन्होने काम शुरू किया जिसमें मधुपुर से सभी के आलेखों को रांची कार्यालय भेजना मेरी जिम्मेवारी थी, जिसे मैं अक्सर भेज कर 'आधी दुनिया' में शामिल करवाता था।

– **जावेद इस्लाम**

बीस वर्ष पहले रोज दी से मेरी पहली मुलाकात एस.डी.सी. सभागार में सम्मेलन के दौरान हुई थी। मैं कार्यक्रम की एंकरींग कर रहा था। रोज दी ने सम्मेलन में अपनी बातें संभल-संभल कर वजनदार तरीके से रखी थीं। उस समय मैंने उनके बारे में सोचा था कि वे काफी सख्त किस्म की हैं। बातचीत बड़े नाप तौल कर करती हैं। सामने वाले की बातें बड़े गौर से सुनती हैं और फिर बेबाकी से जवाब देती हैं। कई बार ऐसे कार्यक्रमों के अलावा संवाद कार्यालय में भी उनसे मिलना जुलना होता रहा। बातचीत में हम लोग कभी-कभी हल्का-फुल्का हंसी वाली बात भी करते थे। एक दो बार उनके घर भी जाने का इत्तेफाक हुआ जब वह बीमार थीं। हिन्दी भाषा पर उनकी अच्छी पकड़ थी। उनकी रचनाएं अक्सर पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलती थी। खड़िया भाषा की वह विद्वान थीं और खड़िया भाषा को समृद्ध करने के लिए वह लगातार प्रयत्नशील रहीं।

रोज दी का लम्बी बीमारी के बाद सबको छोड़कर चली जाना एक आघात से कम नहीं है। खासतौर से शिक्षा और भाषा जगत के प्रेमियों के बीच एक शून्य छोड़ गई जिसकी भरपाई बड़ा मुश्किल भरा काम होगा। मेरी ओर से दिल की गहराईयों से रोज दी को श्रद्धांजलि!

– **अबरार ताबिंदा**

रोज दी का रचना संसार और पर्यावरण सौंदर्य

- प्रस्तुति : घनश्याम

डॉ. रोज केरकेट्टा का रचना संसार इतना व्यापक है कि इसमें जहां महिलाओं के प्रतिरोध के स्वर हैं, वहीं सामूहिक चेतना की संगठित अभिव्यक्ति भी। उनके शोध-ग्रंथ में जहां एक ओर खड़िया संस्कृति की विरासत की गहन और गंभीर ध्वनि है वहीं जंगल और गांव के पर्यावरण की संवेदना भी। पर्यावरण सौंदर्य बोध भी।

आईए, उनके शोध-ग्रंथ "खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन" में पर्यावरणीय चेतना को तलाशते हैं। उक्त ग्रंथ का छठा अध्याय जो "खड़िया लोक-कथा और खड़िया संस्कृति" पर केंद्रित है में बड़े ही साफ शब्दों में संस्कृति के विशेषता को संबंध में कहती हैं-

"मनुष्य संस्कृति के कारण ही पशु पक्षियों से भिन्न है। संस्कृति ही एक जाति से दूसरी जाति को पृथक करती है। पशु-पक्षियों में भी आहार-विहार तथा युग्मन की इच्छा पाई जाती है। वे भी समूह में रहते हैं। समूह में रहकर ही भोजन प्राप्त करने के तरीके सीखते, खतरों का सामना करना या बचाना सीखते, समूह का खतरों से अवगत कराते, शत्रु से दूसरों को बचाने के लिए युद्ध भी करते हैं। किंतु उनकी संस्कृति नहीं होती।

वस्तुतः संस्कृति मनुष्य द्वारा सृजित अभिनव संसार है। अर्थात प्रकृति के अतिरिक्त जो कुछ मनुष्य द्वारा निर्मित है वही उसकी संस्कृति है। मनुष्य द्वारा जो कुछ भी सृजित है उसे दो भागों में बांटा जाता है– भौतिक और अभौतिक। भौतिक रचना इसकी सभ्यता का द्योतक है और अभौतिक आचार-विचार, भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि उसकी संस्कृति है। इन सबसे लैस या इनका 'पन' ही उस व्यक्ति, समाज और जाति की संस्कृति है। यह 'पन' ही किसी व्यक्ति, समाज और जाति को दूसरी जातियों और समाज से विशिष्टता प्रदान करती है। इन सबके द्वारा जो मानसिकता बनती है वह संस्कृति का मूल तत्व है। इससे यह स्पष्ट होता है कि "मनुष्य संस्कृति-निर्माता प्राणी है।" संस्कृति उसकी निजी उपलब्धि है। एक ऐसी विशेषता है जिसमें किसी दूसरी जीवजाति की साझेदारी नहीं है। इसलिए मनुष्य को देखना उचित होता है। भाषा के द्वारा ही व्यक्ति के स्नायविक गठन में बस जाने वाले विचार और व्यवहार के सामूहिक अभ्यास संभव होते हैं।"

भौतिक और अभौतिक संस्कृति को बाह्य और अन्त: संस्कृति या व्यक्त और अव्यक्त संस्कृति भी कहा जा सकता है। व्यक्त संस्कृति रीतियों, प्रथाओं, आचारों, कलाओं और विभिन्न प्रकार के शिल्प तथ्यों की समष्टि है। तो अव्यक्त संस्कृति इन रूपों में मूर्त होने वाले मूल्यों और प्रयोजनों का समाहार । यह दोनों रूप परंपरा द्वारा अर्जित होते हैं। ऐसा करते हुए यह अनुभूति नहीं होती कि वे सामाजिक मूल्य और विचार उन पर थोपे जा रहे हैं। संस्कृतिकरण एक

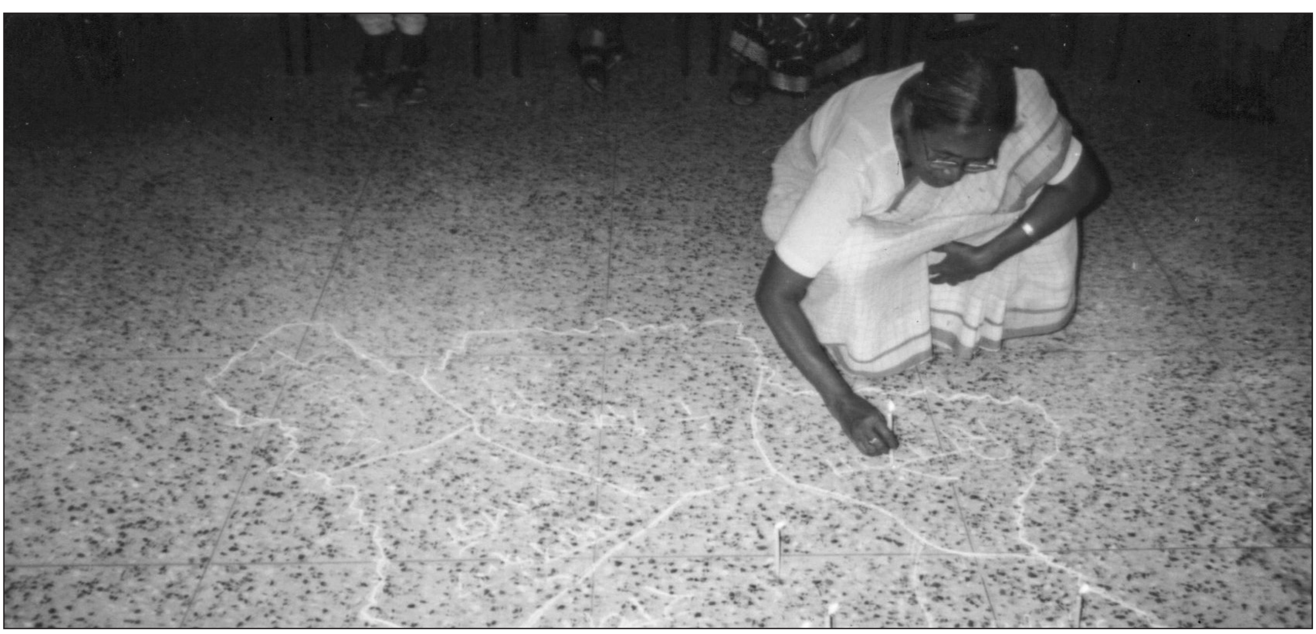

स्वाभाविक प्रक्रिया है। अर्थात् परंपरा और जातीय जीवन एक- दूसरे से ओत-प्रोत होते हैं। इसीलिए भी, किसी जनजाति को दूसरी जनजाति से भाषा, संस्कृति और शारीरिक विशेषताओं के कारण सहज ही अलग नहीं किया जा सकता है।

संस्कृति के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को व्याख्यायित करते हुए रोज दी लिखती हैं "आदिम जनों" ने संगठन और सहयोग के द्वारा समाज का निर्माण किया। वास्तव में सहयोग और संगठन की उपलब्धि संस्कृति है। यह किसी एक आदमी की बुद्धि और परिश्रम- प्रयत्न का फल नहीं है। यदि संगठन न होता तो अकेला व्यक्ति प्राकृतिक विपत्तियों के सामने कब के घुटने टेक कर अपना अस्तित्व समाप्त कर देता। संगठन के माध्यम से ही मनुष्यों ने प्राकृतिक विपदाओं और अवरोधों से संघर्ष करते हुए स्थाई सुरक्षा के लिए भिन्न-भिन्न आविष्कार किए। इन आविष्कारों के अनुसार ही सभ्यता के चरण निश्चित हुए। इन आविष्कारों के प्रभाव के अंतर्गत ही संस्कृति का अध्ययन अनुशीलन-विश्लेषण करना अभीष्ट है।

स्वनिर्मित सभ्यता के अतिरिक्त बाह्य प्रभाव भी संस्कृति को प्रभावित करता है। समाज की व्यवस्था, संस्कृति के विभिन्न अंगों को प्रभावित करती और स्वरूप प्रदान करती है। इससे सामाजिक संगठनों में परिवर्तन आता है। ये परिवर्तन संस्कृति को परिवर्तित करते हैं। फलस्वरूप सामाजिक संगठनों के विकास और ह्रास के साथ ही संस्कृतियां समुन्नत और अवनत होती हैं। संगठनों में परिवर्तन आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के कारण होते हैं। समाज और संगठन की इन परिस्थितियों को परिवर्तित करने की शक्ति, बौद्धिकता, चिंतन और संघर्ष में है। अतः संस्कृति गतिशील और परिवर्तनशील है। परिवर्तन की गति उतनी ही तेज होती है। यदि ठीक से सामंजस्य से न हुआ तो इससे उस समूह की संस्कृति को क्षति भी पहुंच सकती है। तुलनात्मक दृष्टि से विभिन्न संस्कृतियों के मूल्यों को देखें, तो कहीं मूल्य में समानता होती है, कहीं विरोध। समाज मूल्यों में विश्व दृष्टि को लिया जाता है। सभी संस्कृतियों दया, प्रेम, सहानुभूति, जीने के अधिकार जैसे गुणों को प्राथमिकता देती है। इसलिए प्राणी मात्र के लिए तो नहीं, परंतु मनुष्य मात्र के लिए दया, प्रेम, और सहानुभूति की अपेक्षा की जाती है। इसी तरह भारतीय संस्कृति में अतिथि समान रूप से पूज्य और शुभ माने जाते हैं।

भेद के विषय में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। किसी संस्कृति में पुत्र का जन्म सौभाग्य और पुत्री का जन्म अभिशाप माना जाता है तो किसी में संतान मात्र के जन्म से खुशी मनायी जाती है।

विश्व दृष्टि के अंतर्गत समूह या जाति के विचार, विश्वास, धर्म और नैतिकता आदि आते हैं। यह गुण व्यक्ति को समाज द्वारा परंपरागत ढंग से मिलते हैं और उस जाति या समूह के व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। इन व्यक्तिगत गुणों को मिलाकर 'शील' कहा जाता है। जो समाज में संस्कृति है, वही व्यक्ति में शील बन जाती है। परंपरागत रूप से हस्तांतरित गुण ही किसी व्यक्ति और उसके समूह के सारे क्रियाकलापों को नियंत्रित करते हैं। इन गुणों को हटा पाना सहज नहीं है। गुण या शील को हटाकर किसी जाति को विकसित करने की बात सोची नहीं जा सकती।

वे आगे कहती हैं की संस्कृति का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष सौंदर्य- चेतना है। सौंदर्य-चेतना के अंतर्गत किसी जाति के शुभ-अशुभ, सुन्दर-असुन्दर और शकुन-अपशकुन की धारणाएं बनती है। जैसे सुबह-सुबह घर के सामने किसी हरी डाल पर कौवा फुदक-फुदक कर बोले तो पाहुन आने का शुभ संदेश माना जाता है। कौवे का प्रसन्न-बदन बोलना तथा हरी डाल, वृक्ष में जीवन होने का संकेत है जो स्वयं आह्लादकारी है। अगर शुभ निकलता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह शुभ वाली बात कौवे के रूप से सम्बन्धित नहीं है प्रसन्न- बदन होने से सम्बंधित है, ठीक इसके विपरीत वहीं कौवा यदि सबेरे-सबेरे घर के सामने पेड़ की सूखी डाल पर बैठकर कर्कश आवाज में बोले तो उसे शक सूचक माना जाता है। किसी प्रिय जन की बीमारी या मृत्यु के समाचार की आशंका की जाती है। कर्कश आवाज और प्राणहीन डाल यदि मन को भय से भर दे तो आश्चर्य नहीं।

इसी तरह सुन्दर और असुन्दर की धारणा जीवन का निचोड़ है। जनजातियों में सुन्दरता का संबंध देहयष्टि और गोरे रंग से नहीं रहता। दुल्हन के रूप में स्वस्थ, कर्मठ और व्यवहार कुशल लड़की को मान्यता देते हैं। दौलत और बाह्य सौंदर्य को महत्व नहीं देते।

खड़िया मीथ और खड़िया संस्कृति की अध्येता के रूप में काफी गहरा उतरती है और खड़िया जीवन की विशेषताओं पर बारीक नजर डालती हैं। उनका मानना है कि सामाजिक जीवन के साथ खड़िया धर्म घुलमिल गया है। धर्म के साथ सूर्य, चन्द्रमा और ऋतुचक्र का घनिष्ट सम्बन्ध है। अभी तक इन सबके प्रभाव को ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया है। शायद सूर्य और चन्द्रमा का मास और ऋतुचक्र का नियंत्रण इसका कारण है।

सूर्य पूजा या गिढ़िड., पूजा (शाब्दिक अर्थ धूप पूजा और बोड़ पहाड़ी पूजा) से लेकर धानबुनी कदलेटा, नवाखोनी, बदई, सरहूल, इन सबका सम्बन्ध सूर्य, और ऋतुचक्र से है। इस सम्बन्ध में एक खडिया परम्परागत विचार रखता है। ईसाई और

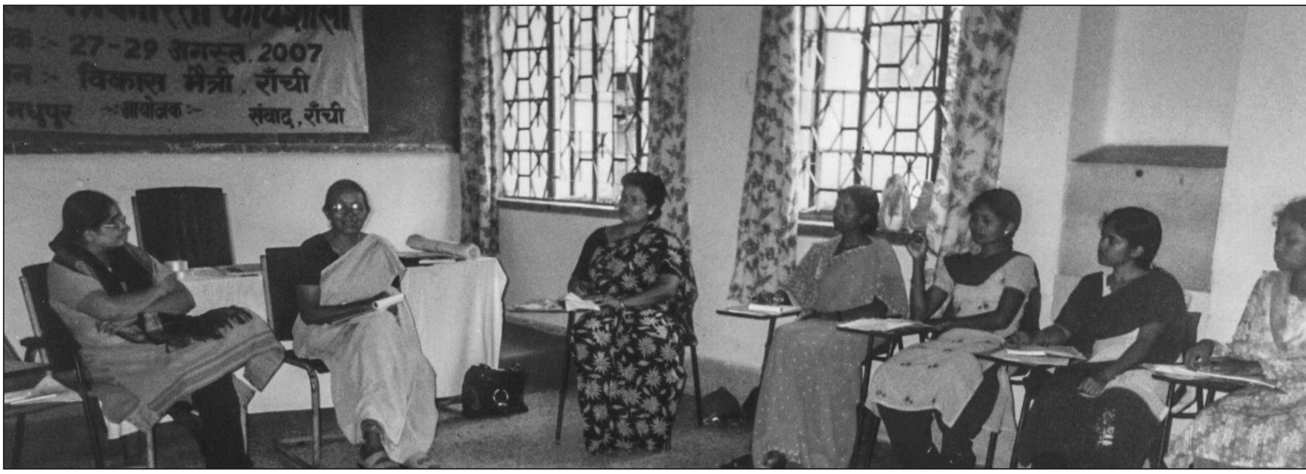

हिन्दू धर्म का प्रभाव जो खड़िया अपने पुराने धर्म में हैं, उनपर भी पड़ा है। अपने जातीय त्योहारों और अनुष्ठानों के अतिरिक्त वे हिन्दू धर्म से प्रभावित होने के कारण उनके पूजा-पाठ को स्वीकार कर चुके हैं। इनमें रामनवमी में हनुमान की तस्वीर और बजरंगवली का झंडा, दशहरे में दुर्गा और जितिया पूजा करने लगे हैं। जो ईसाइयों के सम्पर्क में है ये "बड़ा दिन" के अलावा अन्य त्योहारों में शामिल होते हैं, जिसका सीधा सम्बन्ध रहन-सहन और पहनावे पर पड़ा है।

जो ईसाई हो गए हैं, उनके ईसाई त्योहार हैं, जिनमें बड़ा दिन (जन्म पर्व), ईस्टर और "खरसाँवा" (खार मास) विशेष हैं। टाना भगतों और कबीर-पंथी भगतों का जीवन स्नान तथा भोजन पर विशेष बल देता है। कहीं से लौट कर घर में प्रवेश करने से पहले स्नान करना या हाथ-पैर धोकर कपड़े बदलना, शराब और मांस का व्यवहार न करना, उनका अपने पंथ के प्रति वफादारी है। उनको घर में बनी हंड़िया में परहेज नहीं है पर दारू से परहेज है। इसी तरह कबूतर का मांस वे खा सकते। परन्तु ये सब लोग गिड़िङ पूजा करके ही खेतों में धान बोते हैं। बोने से पहले ईसाई गिरजे में बीज चढ़ाकर प्रार्थना करते और आशीष माँगते हैं। संवसार, भगत और ईसाई पहले बोने वाले दिन अँधेरे में चुपचाप किसी से बात किये बिना बीहन (बीज) लेकर खेत जाते हैं। बोने के लिए बाँस की नई टोकरी (गोनबिङ् नाचु) काम में लाते हैं। धान बोने के बाद उरद की दाल, मछली और मुनगे का साग भाइयाद के साथ अवश्य खाते और भोज करते हैं। अन्तर सिर्फ इतना आया है कि मुर्गे की बलि नहीं दी जाती है।

इसी तरह सरहुल से पहले महुआ, सखुआ, कोयनार साग नहीं खाने के स्थान पर ईसाई पहला महुआ गिरने पर महुआ कटनी चढ़ाकर इन्हें ग्रहण करते हैं जो सरहुल के निकट का रविवार होता है। भगत और संवसार परम्परागत ढंग से मनाते हैं। गोंदली, नवाखानी, गोड़ा नवाखानी और बदई के साथ भी पुरानी परम्पराओं का पालन किया जाता है। सिर्फ बंदई पूर्णिमा के लिए रुकने से पहले ही ग़रीबी के कारण लोग चौरा धान काट कर खाने लगे हैं।

संवसार, भगत, ईसाई सब जेठ महीने में धान बोने के बाद ही महुआ, उड़द आदि का मोरा फोड़ते हैं।

ईसाई लोग बंदई में बैलों और गौशाले की पूजा नहीं करते, बलि नहीं देते, किन्तु कुजरी तेल या घी पशुओं के शरीर पर मलते, दाना खिलाते, माला पहनाते और गौशाला की सफाई करते हैं। वे स्वयं बिना नमक की उबली रोटी आवश्य खाते हैं। सभी लोगों में गोहत्या, गोमांस, गोमांस भक्षण और गायों को कसाइयों के यहां बेचने की पाबन्दी है। वे इसका बिना परेशानी के पालन करते हैं और दूसरों से पालन कराने की चेष्टा करते हैं।

उक्त उदाहरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रोज दी ने अपने इस शोध-ग्रंथ के माध्यम से खड़िया समुदाय की सांस्कृतिक समझ और पर्यावरणीय सौंदर्य को दुनिया के सामने लाकर एक ऐसे विश्व दृष्टि को सामने लाने का काम किया है जिससे आज के पर्यावरणवादियों को भविष्य की दृष्टि और दिशा मिल सकती है। समृद्ध अतीत को समझ कर अवरुद्ध वर्तमान को संवारने का बौद्धिक कौशल पैदा हो सकता है।

इस अर्थ में यह महज शोध-प्रबंध नहीं है। बल्कि बुनियादी परिवर्तन के लिए बौद्धिक हस्तक्षेप है। क्रांतिकारी दस्तावेज है। यहां यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगा कि सकारात्मक क्रांति हमेशा पर्यावरणीय सौंदर्य से ओत-प्रोत होती हैं। एक खुशहाल भविष्य का सृजन करती हैं। समस्त पर्यावरणीय वातावरण में सुंदर से सुंदरतम की ओर बढ़ने का मार्ग खोलती हैं।

रोज जी! रोज दी!!

– हेमंत

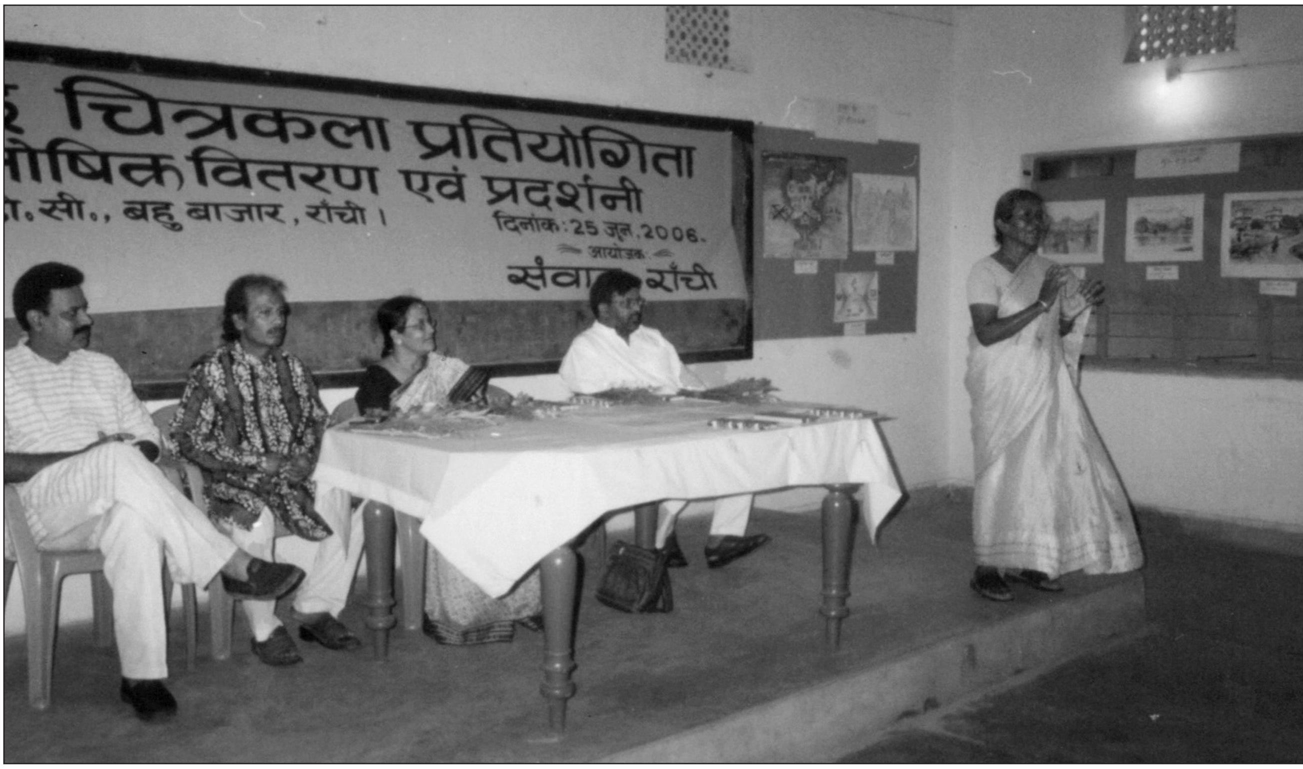

2025, 18 अप्रैल। रोज दी, रात के बारह बज रहे हैं। आपको 'रिप' (रेस्ट इन पीस) के सार्वजनिक स्थान पर दफन होते भर आँख देखा और अपने मकान लौटा, तो अब जाकर यह पत्र पूरा होता लग रहा है, जो मैं 15 अप्रैल की शाम से आपको लिख रहा था। उस दिन शाम को शेखर जी ने सूचना दी कि आप आईसीयू से निकल कर घर आ गयी हैं। डॉक्टर ने कहा है आपको अब ऑक्सीजन के लिए मास्क लगाने की जरूरत नहीं..। दूसरे दिन जाने कब सुबह हुई...मेरे कमरे की खिडकियों पर उजाले का दस्तक पड़ा नहीं... फोन की घंटियां बजीं तो मैंने जाना, अपने आसमानी सफर में घटाओं की खिडकियों से झांके बिना सूरज क्षितिज से काफी दूर जा चुका है...शाम को सूचना मिली रोज दी की अंत्येष्ठी कल नहीं, 18 को होगी... घनश्याम रांची आ रहे हैं... गाड़ी में... सुभाष अपनी बेटी की शादी में व्यस्त है... किसी अन्य ड्राइवर का इंतजाम हो गया है... कल दोपहर तक रांची पहुंचेंगे... आपके घर। इसलिए आप घर में रहिये...।

रोज दी, गाड़ी मुझे ढूंढते आज सुबह आयी। हम सीधे चेशायर होम पहुंचे...। आगे घनश्याम और पीछे शेखर के बीच मैं पंकज का कंधा थामे गेट के अंदर गया, तब तक मैं इस ख्याल में डूब-उतर रहा था कि कोने की सीढियां चढ़कर आपके कमरे तक पहुंचना मेरे लिए मुश्किल नहीं होगा। पंकज से मैं कह रहा था - आप चिंता न करें, साथ रहें एक सीढ़ी पीछे रहें, मैं ऊपर चढ़ लूंगा। और हां, आठ-दस सीढ़ियों के बाद आपका सर भी छत से टकरा सकता है...मैं पिछले तीन-चार सालों में सर झुका कर चढ़ने...रोज दी के कमरे में जाने का अभ्यस्त हो चुका हूं...।

आज सुबह अपने मकान की सीढियां उतर कर अकेले नीचे उतरा - धीमे-धीमे। लेकिन गाड़ी में घनश्याम और शेखर के साथ पंकज को देखा, तो जैसे क्षण भर के लिए देह को प्राणवायु के एक झोंके का स्पर्श मिला और मेरे दिल-दिमाग एक साथ जाग उठे थे...।

गाड़ी से उतर कर गली से गेट तक पंकज का कभी हाथ, कभी कंधा थामे चलते हुए मैं रुक-रुक कर उनसे पूछने का प्रयास कर रहा था - आपको गीतांजलि का - रवि ठाकुर का - ये गीत याद है? ओगो आमार मरण, ओगो आमार एइ जीवनेर/ शेष परिपूर्णता/ मरण, आमार मरण, तुमि

कउ आमारे कथा...। (ओरे मेरे मरण/ जन्म-जीवन की लिये परिपूर्णता/ मरण, ओरे मरण मेरे, कह अपनी कथा...।

पंकज ने न में सर हिला दिया और कहा - पढ़ा लेकिन याद नहीं। जीवन-मृत्यु का बारे में रवि ठाकुर का अनेक गान बंगाल में आज भी चलता है - आछे दुःख, आछे मृत्यु, विरह दहन लागे... ऐई शॉब...।"

इतना कहकर वह चुप हुए, तो मुझे अगली पंक्ति याद आ गई - 'तबुओ शांति तबु आनन्द, तबु अनन्त जागे।'

लेकिन गेट के अंदर परिसर में पहुंचते ही सारा नजारा बदला दिखा...परिसर में सलीके से कुर्सियां लगी थीं... ऊपर जाने की सीढ़ियों के पास शेड की आखरी छोर के छाया में बैठे लोग बाइबल के किसी अंश को समवेत स्वर में गा रहे थे...। मैं गेट से शुरु शेड की छाया में खड़ा खाली कुर्सी तलाश रहा था कि आगे की एक कुर्सी पर बैठे घनश्याम को किसी ने इशारे में बताया कि रोज दी का पार्थिव शरीर आगे की महायात्रा के लिए नीचे आ गया है... सामने के कमरे में..!

मैं समवेत गायन के सुर के सहारे उसके हिंदी शब्दों को पकड़ने की कोशिश करता जिस कुर्सी पर बैठा वह उसी कमरे के दरवाजे के ठीक सामने था...! मैंने कुर्सियों की चार-पांच पिछली कतारों के बाद खड़े पंकज को सामने आने का इशारा किया, लेकिन उनकी नजर भी शायद समवेत गायन के अर्थ की तलाश में गुम थी...।

सो मैं खुद कुर्सी से उठा और सामने के कमरे में पहुंच गया। मेरे पीछे घनश्याम आ गये...। आपको दफ़न-बॉक्स में देखा। बॉक्स खुला था। आप चश्मा पहने सोई हुई थीं...! मैं ने हाथ बढ़कर आपके चेहरे को छुआ...। बगल में खड़े व्यक्ति से कहा - ये चश्मा! आगे की यात्रा में इसकी क्या जरूरत...। मेरे इतना कहते ही उस व्यक्ति ने आपका चश्मा उतार कर बगल में धर दिया और मुझसे कुछ कहा, ऐसा ही कुछ - "....ये चर्च का रिवाज है न...रेस्ट इन पीस के लिए ले जाते वक्त उनका सामान भी साथ...। लेकिन थैंक्स, अब ठीक है..!"

तब मैं ने फिर से आपके चेहरे को छुआ, देर तक। फिर पीछे हट गया...। तो देखा कई स्त्री-पुरुष आगे बढ़कर आपकी ललाट पर अपनी अंगुली से 'क्रॉस' का चिन्ह अंकित कर आंसू पोंछते आगे बढ़ रहे थे...! मैं दफन-बॉक्स में आपके ढके पाँव के पास ठिठक गया और अचानक महसूस किया कि आपके चेहरे को छूते ही मेरे प्राणों में आपकी सुगंध गुंजायमान हो उठी है - आमार जाबार समय होलो...! आमार कैनो राखीस धरे? चोखेर जलेर बांधन दिए बांधीस ने आर मायार डोरे (मेरे जाने का समय हो गया है, अब मुझे पकड़कर क्यों रखते हो? और न मुझको बांधो अश्रुजल के माया-डोर से।)...

++

22-25 साल पहले मैंने आपको देखा था। शायद आपने भी तभी मुझे पहली बार देखा था - सुना था। उसके बाद कई बार आपसे भेंट हुई। रांची में, पटना में। समूह में, गोष्ठियों में बातें हुईं, बहसें चलीं, विमर्श हुए। हर बार चाहा पूछूं - आपका नाम 'रोज' कैसे पड़ा? कैसा गुलाब?'

मैंने आपके और मेरे कॉमन मित्रों से कभी पूछा नहीं, पूछना चाहा भी नहीं। हालांकि आपके घर-परिवार, समाज, रिश्ते, मित्र-बंधु, कार्य-व्यापार आदि के बारे में सुना। आपके नाम का एक्चुअल अर्थ जाना, लेकिन मेरी यह जिज्ञासा अनुत्तरित रही कि आपके नाम का रियल अर्थ क्या है? आपने उम्र के लम्बे सफर में खुद को रचने के क्रम में अपने नाम का क्या अर्थ संजोया? वो गुलाब जिसकी पंखुड़ियां कांटों से बिंधी हैं?

मैंने आज तक जाना नहीं। आपको देखने-सुनने से पहले जीवन के सफर में करीब से गुजरीं तरह-तरह के रंगों की गुलाब-सी स्त्रियों को देख यह सवाल कौंधा था कि क्या पंखुड़ियों से कांटों का नुकीलापन कुंद होता है - कुंद हो सकता है?

हां, आपके कहानी संग्रह – 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' के संपादन के लिए शिशिर जी का सह-पाठी बना, तो यह एहसास जन्मा कि कांटों से बिंध कर भी खिलता गुलाब अपनी खुशबू बिखेरता है!

लेकिन तब भी आपसे पूछ न पाया - कैसे और कहां तक? क्यों, जानती हैं? 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' में संकलित कहानी 'गंध' के एक छोटे-से अंश पर मैं अटक गया था। मैं आपके लिखे शब्दों में आपको खोजने लगा था...

सरल स्वभाव की जादूगर : डॉ. रोज केरकेट्टा

– गुलाब चंद्र

झारखंड की धरती अनेक साहित्यकारों, शिक्षकों और जनसंघर्षों की मूक आवाज़ों को कलम से व्यक्त करने वालों की जननी रही है। इन्हीं में एक थीं डॉ. रोज केरकेट्टा, जिनका जन्म 5 सितंबर 1940 को सिमडेगा जिले के केसिरा सुंदर टोली गांव में हुआ। एक साधारण गांव में जन्मी इस असाधारण महिला ने अपनी लेखनी और शिक्षण के माध्यम से जनजातीय समाज के हक, पहचान और संस्कृति को नई चेतना दी।

शैक्षणिक यात्रा और शिक्षण कार्य

रोज केरकेट्टा ने हिंदी साहित्य में एम.ए. और पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। उनका जीवन शिक्षण और लेखन को समर्पित रहा। उन्होंने कोलिब्र लाड़बा स्कूल, पटेल मोंटेसरी स्कूल और बैजनाथ जालान सिसई कॉलेज में शिक्षिका के रूप में कार्य किया। इसके बाद वे रांची विश्वविद्यालय के जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग में खड़िया भाषा की अध्यापक बनीं – यह कार्य न केवल शिक्षा का हिस्सा था, बल्कि भाषा और संस्कृति की पहचान को बचाने का एक सशक्त माध्यम भी था।

लेखनी की सहजता और जनपक्षधर चेतना

डॉ. रोज केरकेट्टा की लेखनी की सबसे बड़ी विशेषता थी उसकी सहजता और संवेदनशीलता। वे गूढ़ बातें भी इतनी सरल भाषा में कह देती थीं कि हर पाठक उससे जुड़ सके। उनकी कहानियाँ जब गांव की मिट्टी, परंपरा, स्त्री की संवेदना और जनजीवन की सच्चाई को प्रस्तुत करती थीं, तो पाठकों को ऐसा लगता मानो वे गांव की बैठक में बैठकर किसी बुजुर्ग महिला से कहानी सुन रहे हों। उनकी शैली में गहराई थी, छलावा नहीं था। उन्होंने आदिवासी, छोटानागपुर संदेश, साल पत्र, युद्धरत आम आदमी, चौमासा, जोहार जैसी पत्र-पत्रिकाओं में लगातार लिखा। वे देशज स्वर और सहयात्री जैसी पत्रिकाओं की परामर्श मंडल की सदस्य भी रहीं। उनके कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें उनकी भाषा की आत्मीयता, ग्रामीण जीवन की सूक्ष्म समझ और आदिवासी चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

डॉ. केरकेट्टा ने कई साहित्यिक सम्मेलन, कार्यशालाओं और जनमंचों में अपनी बातें को रखती थी तो उनके वक्तव्यों में गांव की जमीनी सच्चाई और शोषणकारी सत्ता तंत्र के बीच की टकराहट साफ झलकती थी। वे शिक्षा को केवल अकादमिक विषय नहीं, बल्कि बदलाव का एक प्रभावशाली औज़ार मानती थीं।

उनका विश्वास था कि शिक्षण की प्रक्रिया में सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक समझ का समावेश होना चाहिए। जब वे बोलती थीं, तो एक शिक्षक नहीं, एक मर्मज्ञ साधिका के रूप में बोलती थीं, जिनके पास शब्दों से ज्यादा अनुभवों की ताक़त होती थी।

झारखंड, पर्यावरण और आधुनिकता पर दृष्टिकोण

मैं जब भी मिला और जब झारखंड के पर्यावरण संरक्षण पर बात किया तो डॉ. केरकेट्टा की चिंतनधारा केवल साहित्य और भाषा तक सीमित नहीं दिखाई दी। वे झारखंड की पर्यावरणीय विरासत और सांस्कृतिक विविधता को बचाने की प्रबल पक्षधर थीं। उनका मानना था कि झारखंड तभी सुरक्षित रहेगा, जब हम गांव की हरियाली, परंपरा और संस्कृति को बनाए रखते हुए आधुनिकता की सहज प्रवृत्तियों को समावेशी रूप में स्वीकारें। वे कहती

थीं कि विकास का अर्थ अगर गांव की संस्कृति की हत्या और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है, तो वह विकास नहीं, विनाश है। उन्होंने पर्यावरणीय चेतना को अपने लेखन और वक्तव्यों में बार-बार उकेरा और यह बताया कि पर्यावरण और समाज एक-दूसरे से अटूट रूप से जुड़े हैं।

निजी स्मृतियाँ और मानवीयता की मिसाल

मैं स्वयं उनसे कई बार मिला हूँ। हर बार उन्होंने न केवल विचारों की गहराई दी, बल्कि अपने सरल स्वभाव से दिल को छू लिया। जब वे किसी मुद्दे पर बात करती थीं, तो उनके शब्दों में न तो आक्रोश होता था, न ही दिखावा, बल्कि एक शांत लेकिन दृढ़ संकल्प होता था — जो समाज को भीतर से बदलने की इच्छा रखता था।

उनकी यह विशेषता थी कि वे किसी भी विषय पर बोलते हुए उस मुद्दे को गांव, महिला, भाषा और प्रकृति के नजरिए से देखने का आग्रह करती थीं। यही बात उन्हें साधारण लेखकों से विशिष्ट बनाती थी।

लेखनी जो जीवित रहेगी

आज डॉ. रोज केरकेट्टा हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी कहानियाँ, उनकी लेखनी और उनका सादा मगर गहन दृष्टिकोण हमें झारखंड, गांव, आदिवासी जीवन और पर्यावरण के बीच गहरे संबंध को समझने में आज भी मार्गदर्शन करता है। उनकी भाषा, उनके विचार और उनकी संवेदना – झारखंड की मिट्टी से जुड़ी चेतना की अमूल्य धरोहर हैं। वे सिर्फ शिक्षिका नहीं थीं, वे उस जनता की आवाज़ थीं, जिसे अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है।

उनकी स्मृति में यही कह सकता हैं – सरलता में गहराई की मिसाल थीं रोज केरकेट्टा– जिनकी लेखनी आज भी ज़मीन की सच्चाई को शब्द देती है।

हमारी प्रेरणा थी रोज दी

– एनी टुडू

रोज दी से मेरी पहली मुलाकात वर्ष 2009 में 'जुड़ाव' कार्यालय, मधुपुर में हुई थी। महिला क्षमतावर्द्धन कार्यशाला के दौरान हम मिले थे। रोज दी प्रशिक्षिका थीं और मैं प्रशिक्षणार्थी। मैंने जब रोज दी को देखा, तब रोज दी चुपचाप बैठी हुई थीं। किसी से कोई बातचीत नहीं, बैठे-बैठे कुछ पढ़ रही थीं। मैंने किसी से पूछा कि हम लोगों को ट्रेनिंग कौन देंगी, कोई नहीं बता पाया। जब कार्यशाला शुरू हुई तो रोज दी खड़ी हो गईं। अपना परिचय दिया और कार्यशाला को शुरू किया।

तब हमने देखा कि एक आदिवासी महिला होकर किस प्रकार उच्च शिक्षा ग्रहण की होगी। इसके बाद प्रोफेसर बनना और उसके साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता बनकर समाज के बीच काम करना, और विशेष रूप से समाज के बीच जाकर जेंडर पर बात कर गांव के महिला-पुरुषों को संवेदनशील बनाना, यह सबसे बड़ी चुनौती वाला कार्य है जिसे उन्होंने सफलता पूर्वक किया।

रोज दी जब भी कार्यशाला चलाती थीं, तब-तब लड़कियों और महिलाओं को शिक्षित होने की प्रेरणा देती थीं। सदियों से महिलाओं को हर क्षेत्र में पुरुष-प्रधान समाज ने पीछे रखा है, इससे उठकर महिलाओं को अपने हक-अधिकार हासिल करने की बात हमें बताती थीं।

वह कहतीं थी कि कभी भी यदि किसी विधवा महिला या किसी भी महिला के साथ प्रताड़ना या शोषण हो रहा हो, तो उसके साथ खड़ी होकर उनका साथ देना, उनको न्याय दिलाना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। इसके लिए सबसे पहले तो अपने आप को मजबूत करना होगा और पढ़ना-लिखना सीखना होगा। किताबी ज्ञान और सामान्य ज्ञान दोनों को हासिल करना बहुत जरूरी है।

कोई लड़की या महिला स्कूल, कॉलेज या किसी भी काम पर जा रही हो और उसके साथ रास्ते में किसी प्रकार की छेड़खानी की जा रही हो, तो उसको प्रतिकार करने के लिए हिम्मत, साहस और आत्मविश्वास से लैस भी होना होगा। तभी हम अपने आप को या दूसरों को न्याय दिला सकेंगे।

खासकर जब डायन के नाम पर, विधवा और कमजोर महिलाओं को प्रताड़ित किया जाता था, तब रोज दी उनके साथ खड़ी होती थीं और कहती थीं कि यह केवल जमीन हड़पने की साजिश है।

वैसे तो रोज दी मेरी मां के समान थीं, लेकिन हम सभी प्यार से उनको रोज दी कहते थे। वह बहुत ही सरल और मधुर आवाज में बोलती थीं। इतना अच्छे से कार्यशाला में समझाती थीं कि सब ध्यान से सुनते, लेकिन कुछ लोग ध्यान से नहीं देते थे। ध्यान उनका इधर-उधर भटकता था, तब वह पूछतीं कि अभी मैंने क्या बताया, कोई नहीं बता सकता था। तब उनको गुस्सा आता, लेकिन गुस्से में भी सरलता से ही बात करतीं।

वह कहती थीं कि गुस्से वाली बात को भी अगर अच्छे से बोलोगे, तो संवाद का वातावरण बना रहेगा। रोज दी कभी भी गुस्सा नहीं करती थीं। गुस्से में भी मुस्कुराती थीं। और भी, इनके अंदर कई अच्छे गुण थे। कहते हैं न, अच्छे लोग इस धरती पर ज़्यादा दिन नहीं टिकते हैं सो आज रोज दी भी हमारे बीच नहीं रहीं। रोज दी का जाना आदिवासी समाज और महिलाओं के लिए बड़ी क्षति है।

रोज केरकेट्टा एक उदाहरण हैं

– रविभूषण

रोज केरकेट्टा आदिवासी लड़कियों एवं स्त्रियों के लिए एक उदाहरण हैं। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व समान रूप से प्रभावशाली रहा है। वे बहुतों की प्रेरणा-स्रोत भी रही हैं और जब वे शारीरिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, तब भी उनके किये गये कार्य लगभग एक प्रकाश-स्तंभ की तरह है। उनके साहित्यिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पिता प्यारा केरकेट्टा की बड़ी भूमिका है। उन्होंने अपने पिता की जीवनी 'प्यारा मास्टर' लिखी हैं। इस परिवार की तीन पीढ़ियों- प्यारा केरकेट्टा, रोज केरकेट्टा और वंदना टेटे पर अलग से विस्तार से लिखने की जरूरत इसलिए है कि शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में, सक्रियता और आन्देलनकर्ता के रूप में तीन पीढ़ियां झारखंड के आदिवासी समाज में शायद ही इनके, इस परिवार के अलावा और कोई हो। बड़ी बात यह है कि अगली पीढ़ी ने अपने सार्थक कर्म से अपनी राष्ट्रीय पहचान भी बनाई है। रोज केरकेट्टा का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे कवि, कहानीकार, अध्यापक, संस्कृतिकर्मी, अनुवादक, सम्पादक एवं सक्रियतावादी (एक्टिविस्ट) थीं। उनके पिता का अध्ययन-संसार व्यापक था। गोर्की, टॉल्स्टॉय, शेक्सपियर, पर्ल-ए-बक, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चन्द्र, शरत चन्द्र, प्रेमचन्द, प्रसाद, बेनीपुरी सबको उन्होंने पढ़ा था। रोज केरकेट्टा ने लिखा है कि उनके संकलन में "नोबेल पुरस्कार-प्राप्त प्रायः सभी किताबें थीं।" उन्होंने खड़िया और हिन्दी में लेख, नाटक, कहानी और कविताएं भी लिखीं। अपनी मातृभाषा और हिन्दी में लिखने का संस्कार और प्रेरणा रोज केरकेट्टा को अपने पिता से प्राप्त हुई। रोज केरकेट्टा एक गौरवशाली पिता की गौरवशाली संतान थीं। उनहोंने पिता के कार्य को और आगे बढ़ाया। आदिवासी महिलाओं में रोज दी की नेतृत्वकारी भूमिका रही है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व का निर्माण और विकास का एक शानदार उदाहरण सामने रख दिया है। आदिवासी महिलाओं के लिए वे कई अर्थों में उनकी पथ-प्रदर्शिका हैं।

रोज केरकेट्टा ने सिमडेगा कॉलेज से बी.ए. और रांची विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। डॉ दिनेश्वर प्रसाद के अधीन उन्होंने 'खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर पी-एच. डी. की। आरंभ में वे स्कूल में शिक्षिका रहीं। बाद में लगभग 05 वर्ष तक वे सिसई कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका थीं। रांची विश्वविद्यालय में 'जनजातीय क्षेत्रीय भाषा-विभाग' की स्थापना के पश्चात वे यहां खड़िया भाषा-साहित्य की अध्यापिका रहीं। उनका लेखन हिन्दी और खड़िया दोनों भाषाओं में है। वे हिन्दी और खड़िया की सक्रियतावादी लेखिका हैं। रोज दी 'एक्टिविस्ट' थीं। उनके लेखन के साथ ही उनके आन्देलनकारी रूप पर भी विचार करने की अब अधिक जरूरत है। झारखंड आन्देलन से उनका जुड़ाव मुख्यतः महिला-अधिकारों को लेकर था। वे इस आन्देलन से इसलिए जुड़ीं कि महिलाओं को भी समाज में बराबरी का हक मिले। वे पितृसत्तात्मक समाज की विरोधी थीं। उनका विरोध पुरुष से न होकर शताब्दियों-सहस्राब्दियों से बने उस सामाजिक ढांचे से था, जिसमें स्त्रियां पुरुष के समतुल्य नहीं थीं। वे बराबरी का हक मौलिक स्तर पर नहीं चाहती थीं। "सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, प्रशासनिक बराबरी सिर्फ मौखिक नहीं, नीतिगत और कानूनी हो।"

हिन्दी और खड़िया में उनकी कई स्वतंत्र पुस्तके हैं– 'अबुसिब मुरडअ' (पहली बारिश) खड़िया और हिन्दी कविताओं का द्विभाषी संग्रह है, जिसकी कविताएं आदर्श और स्वप्न से जुड़ी हैं। रोज केरकेट्टा के सामने समाज-निर्माण का एक आदर्श और स्वप्न था। आदिवासी समाज और स्त्रियों से जुड़े अनेक सवालों पर उन्होंने समय-समय पर जो लेख लिखे, उनका संग्रह है 'स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति' इस संग्रह के लेख पत्र-पत्रिकाओं और जर्नल्स में प्रकाशित हो चुके थे। उनकी कहानियों, कविताओं, लेखों और अन्य रचनाओं को एक साथ रख कर देखें, तो हमें आदिवासी जीवन, समाज, प्रश्न, संकट, समस्याएं, पर्व-त्योहार आदि सब दिखाई देंगे, लगभग सम्पूर्णता में। उनकी कहानियों के तीन संग्रह हैं - 'पगहा जोरी-जोरी रे घोटो', 'बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां' और 'रोज केरकेट्टा : प्रतिनिधि कहानियां : उनकी अधिकांश पुस्तकें 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन' से प्रकाशित हैं। खड़िया पुराण कथाओं पर उनकी एक पुस्तक हैं - 'खड़िया पुराण कथाएं' संभवतः वे झारखंड के आदिवासी समाज की अकेली सर्वाधिक महत्वपूर्ण सक्रियतावादी लेखिका हैं।

रोज दी की व्यक्तित्व किसी भी अर्थ में उनके कृतित्व से कम गरिमामय और प्रभावशाली नहीं है। वे झारखंड और रांची की अनेक संस्थाओं से जुड़ी रहीं। 'संवाद' की वे संस्थापक-अध्यक्ष थीं। इस संस्था

की त्रैमासिक पत्रिका 'आधी दुनिया' की वे लगभग पचीस वर्ष तक सम्पादक रही थीं। खड़िया भाषा और उसके साहित्य को उन्होंने अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। एम.ए. में सिलेबस बनाने से लेकर उसके साहित्य को समृद्ध करने में उनकी एक भूमिका है। शिक्षा परियोजना के साथ ही वे एन.सी.ई.आर.टी. से जुड़ी रहीं। जीवन उनका सदैव श्रम और कर्म से जुड़ा रहा - 'मेरे पथ में न विराम रहा'। प्रेमचन्द की कहानियों का उन्होंने खड़िया में अनुवाद किया - 'प्रेमचंदाओ लुड़कोए' 'सिंकोए सुलोलो' उनका खड़िया कहानी-संग्रह है। उनकी कहानियां सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता और नारीवादी चेतना की कहानियां हैं। सिमडेगा के एक छोटे से गांव कसिरा सुंदरा टोली में जन्मी रोज केरकेट्टा की राष्ट्रीय पचहान है, उनके जीवन काल में ही बनी। उन्हें रानी दुर्गावती सम्मान और अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान की अतिरिक्त अन्य सम्मानों से भी सम्मानित किया गया।

वे एक सांस्कृतिक कार्यकर्ता थीं। उनके यहां राजनीतिक दल नहीं, सांस्कृतिक संगठन महत्वपूर्ण है, जिसे हम उनकी कई कहानियों में देखते हैं। उनकी कहानियों के स्त्री-पात्र मुखर और प्रतिरोध-संघर्ष की चेतना से भरपूर हैं। वे एक सचेत, संवेदनशील, विचारवान कथाकार हैं। 'मैना' कहानी में सांस्कृतिक संगठन की बात कही गयी है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में बदलाव और परिवर्तन की महती आकांक्षा है। 'केरा बाँझी' कहानी में बालघून बट्टू का प्रतिरोध है। कहानी में शिक्षित बहू का मात्र एक संतान पैदा करने का निर्णय साहसी निर्णय है। वह अपने श्वसुर की धौंस में नहीं आती - "हाँ हूँ मैं... तो जो करना है कर लो, मैं एक ही बच्चा पैदा करूंगी।" कई कहानियों के पात्र समाज के पारम्परिक मूल्यों को चुनौती देते हैं। स्त्रियां पितृ-सत्ता का विरोध करती हैं न कि पुरुष का। 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' की कुल सोलह कहानियों में स्त्री-पात्र प्रमुख है। उन्होंने हिन्दी भाषी समाज को आदिवासी समाज और उनकी जीवन-शैली से न केवल परिचित कराया है, अपितु उनके सामने उस समाज को प्रस्तुत कर बहुत कुछ सोचने का एक संदेश भी दिया है। प्रकृति उनके यहां सदैव सर्वत्र उपस्थित है। 'लत तो छूट गई' में दो सखियां - शान्ति और प्रमोदिनी मैदानी इलाके की संस्कृति पर सवाल करती हैं। मैदानी इलाकों की संस्कृतिक आदिवासी इलाकों की तरह खुली और स्वतंत्र नहीं हैं। अधिसंख्या कहानियों में आदिवासी जीवन, समाज, संस्कृति, घर-परिवार, मेला-त्योहार, पर्व-उत्सव, गोत-गान सब हैं। अनेक आदिवासी शब्दों से रोज केरकेट्टा ने हिन्दी भाषा को कुछ और अधिक समृद्ध किया है। 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' में दया का परिवार उसकी पढ़ाई के पक्ष में नहीं है। पढ़ने का उसका निर्णय परिवार से उसका पहला विद्रोह है। कहानीकार का 'कंसर्न' बड़ा है। उनकी कहानियों में प्रेम है, प्रतिरोध और संघर्ष है। ट्रैफिकिंग पर भी उन्होंने कहानी लिखी। शिल्प के प्रति रोज केरकेट्टा में कोई आग्रह नहीं है। बड़ी सहजता से सम्प्रेषणीय भाषा में वे बहुत कुछ कहकर पाठकीय चेतना का विकास करती हैं। उनके यहां, स्त्री-स्वर, स्त्री-जीवन, स्त्री-संघर्ष और स्त्री-प्रतिरोध प्रमुख है। आदिवासी समाज का वहां प्रामाणिक एवं विश्वसनीय चित्र है। उसके अन्तर्विरोध भी हैं वे एक पक्षधर प्रतिबद्ध, परिवर्तनकामी कथाकार हैं।

उनकी चिंता में केवल पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और जंगल ही नहीं, 'कोंपल' भी हैं। रोज दी के यहां भाषा का अपना एक ऐसा वैभव है, जिसे बहुत आसानी से देखा-समझा नहीं जा सकता। अपनी एक कविता में उन्होंने जंगल को अपना घर, नदी को अपनी माँ और धरती को अपना शरीर कहा है। यह अद्भुत और असामान्य कथन है। यहां शब्द के अर्थ बदल गये हैं। किसी भी भाषा के शब्दकोश में न तो जंगल का अर्थ घर है, न नदी का माँ और न धरती का शरीर। यह एक नया अर्थ-वैभव है। यह आदिवासी कविता की ही नहीं, हिन्दी कविता की भी महान पंक्ति है। जहां शब्द-विशेष के प्रचलित एवं सर्वमान्य अर्थ गौण हो जाते हैं। केवल आदिवासी कवि ही कह सकता है कि जंगल उसका घर है, नदी उसकी माँ है और धरती उसका शरीर है। विश्व आदिवासी कविता में इस पंक्ति को सर्वप्रमुख स्थान मिलना चाहिए। हिन्दी कवियों के लिए इसका अर्थ नहीं है, पर आदिवासी कवियों के लिए ही नहीं, समस्त आदिवासियों के लिए यह काव्य-पंक्ति महत्वूपर्ण है। आज जब जंगल उजाड़े जा रहे हैं, जंगलों से आदिवासियों को हटाया जा रहा है, अनेक नदियां सूख गयीं, नालों में बदल गयीं, प्रदूषित हो गयीं और धरती पर खतरा है, पृथ्वी संकट में है, तब हम इस कवि-कथन का अर्थ और मर्म समझ सकते हैं। जंगल, नदी और धरती को अपने जीवन से जोड़कर देखना सबके लिए संभव नहीं है। रोज केरकेट्टा का रचना-संसार व्यापक फलक का है। वे एक उदाहरण के रूप में हैं- लगभग एक दीप-स्तंभ और प्रकाश-स्तंभ की तरह।

बोलती तस्वीरें

भाई के 75वीं जन्म दिवस पर

रोज केरकेट्टा अपने भाई बहन एवं नाती पोती के संग

रोज केरकेट्टा श्री फागु उराँव के परिवार के साथ

रोज केरकेट्टा श्री फागु उराँव के परिवार के साथ

रोज केरकेट्टा अपने परिवरवालों के साथ गाँव गरजा में
पारिवारिक पत्थलगड़ी में

रोज केरकेट्टा बेटी वंदना एवं उभरते युवा नेता श्री राज उराँव के साथ